पाषाणी।

(अहल्या देवी।)

स्वर्गीय कविश्रेष्ठ द्विजेन्द्रलाल रायकी
बंगला गीति-नाटिकाका अनुवाद।

[गौतम—शत्रुको दुःख देना धर्म नहीं है । प्रतिहिंसा पिशाच शत्रुको
दमन कर सकती है, विनाश कर सकती है, भस्म कर सकती है।
किन्तु क्षमा शत्रुको मित्र करती है, निरीह करती है और
देवता बना देती है। दुःख देना नरकका धर्म है,
प्रतिहिंसा पृथिवीका धर्म है और क्षमा
स्वर्गका धर्म है।—]

अनुवादकर्त्ता-
श्रीयुक्त पण्डित रूपनारायण पाण्डेय।

प्रकाशक-
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई।

वैशाख १९७७ वि०।
प्रथमावृत्ति।] अप्रैल १९२०। [मूल्य बारह आने।
जिल्दसहितका १)

प्रकाशक—नाथूराम प्रेमी, प्रो०
हिन्दी-ग्रन्थरत्नाकर-कार्यालय
हीराबाग, बम्बई.

*   *

प्रिंटर—मणिलाल इच्छाराम देसाई,
प्रो० "गुजराती" प्रिंटिंग प्रेस, फोर्ट,
सासुन बिल्डिंग नं० ८ ब

निवेदन।

स्वर्गीय कविवर द्विजेन्द्रलाल रायका यह तेरहवाँ नाटक प्रकाशित किया जा रहा है। हमें विश्वास है कि हिन्दी-संसारमें द्विजेन्द्र बाबूके अन्य नाटकोंके समान इसका भी खूब आदर होगा।

यह उनके पद्य-नाटकका अनुवाद है। हम चाहते थे कि मूलके समान अनुवाद भी पद्यमें ही कराया जाय; परन्तु अभी तक हिन्दीमें 'ब्लेंक वर्स' का प्रचार न होनेसे और प्रचलित पद्य-रचनामें नाटक सुन्दर न दिखनेसे गद्यानुवाद पर ही सन्तोष करना पड़ा।

मूल नाटक विक्रम संवत् १९५७ के आश्विनमें प्रकाशित हुआ था। अर्थात् यह द्विजेन्द्र बाबूकी शुरू शुरूकी रचना है; फिर भी शब्द-सम्पत्ति, रचना-कौशल और चरित्र-चित्रणमें अनिन्द्य-सुन्दर है। इसे पढ़कर बंगालके सुप्रसिद्ध साहित्यसेवी स्वर्गीय क्षीरोदचन्द्र राय चौधरी मुग्ध हो गये थे। उन्होंने इसकी प्रशंसा करते हुए लिखा था—"आज अँधेरी गुफामें एक अपूर्व सुन्दर और महान् छविका दर्शन किया। * * महर्षि गौतमका चित्र गेटे और शेक्सपिअरकी निन्दाका विषय नहीं है।" सुकवि श्रीयुत् शशाङ्कमोहन सेन बी० ए०, बी०एल० ने अपने 'बंगवाणी' नामक ग्रन्थमें लिखा है—"सब ओरसे विचार करने पर, हम 'पाषाणी' को बंगभाषाका सर्वोत्कृष्ट नाटक कह सकते हैं। हमारे इस कथनकी सत्यताको हृदयंगम करनेके लिए पाषाणीकी चरित्र-सृष्टि, घटनाओंका सन्निवेश, भाषा-प्रयोग और नाटकीय कथानकपर अच्छी तरह विचार करना चाहिए। अब तक बंगलाके किसी भी नाटकमें ये समस्त गुण एकत्रित नहीं देखे गये।" द्विजेन्द्रबाबूके जीवन-चरितके लेखक श्रीयुक्त नव-

कृष्ण घोषकी राय है कि "पाषाणी कुछ दोषों और त्रुटियोंके रहते हुए भी अतुल नीय नाटक है। यह संसारकी चाहे जिस भाषामें लिखा जाता, उसके साहित्यके श्रृंगारकी एक चीज होता।" बंगालके श्रेष्ठ समालोचक रायबहादुर पण्डित राजेन्द्र-चन्द्र शास्त्रीके शब्दोंमें "पाषाणी नाट्य-साहित्यमें अद्वितीय" है।

इस नाटकमें अहल्याका चरित्र इस रूपमें चित्रित किया गया है कि वह अपनी इच्छासे, जान बूझकर, व्यभिचारिणी बनी थी। परन्तु पौराणिक कथाके अनुसार अहल्याने इन्द्रको भ्रमवश गौतम समझ लिया था और इस कारण उसे चरित्रभ्रष्ट होना पड़ा था। बहुतसे पुराणमतानुयायी लेखकों और समालोचकोंको यह बात बहुत खटकी थी और इस कारण उन्होंने लेखक पर खूब ही वाग्बाणोंकी वर्षा की थी। आश्चर्य नहीं जो हमारे हिन्दी पाठकोंमेंसे भी कुछ लोग इस बातसे चिढ़ें; परन्तु हमारी समझमें इसमें चिढ़नेकी कोई बात नहीं है। उन्हें वाल्मीकि रामायणमें अहल्याकी कथाको पढ़ लेना चाहिए। उससे उनका समाधान अवश्य हो जायगा। द्विजेन्द्रबाबूने वाल्मीकि रामायणका ही अनुसरण किया है।

महर्षि वाल्मीकि कहते हैं—"दुष्टबुद्धि अहल्याने मुनिका वेष बनानेवाले इन्द्रको जानकर भी, रतिके लोभसे, उस बातको अंगीकार कर इन्द्रका मनोरथ पूरा किया। इसके बाद अहल्याने कहा, हे सुरश्रेष्ठ! यहाँसे शीघ्र चले जाओ और मुझे तथा अपनेको (गौतमसे) बचाओ। इन्द्रने हँसकर कहा, हे सुन्दरि! मैं प्रसन्न हुआ और अब शीघ्र जाता हूँ।"

—आदिकाण्ड, सर्ग ४८।

रामायणके इस अवतरणको पढ़नेसे यह कहनेके लिए जगह नहीं रहती है कि कविने पौराणिक चरित्रों पर श्रद्धा न होनेके कारण, अहल्याके चरित्रको जान बूझकर गिराया है और न यही सिद्ध किया जा सकता है कि आदि कविकी अहल्या बंग-कविकी अहल्यासे चरित्र-गुणमें कुछ बढ़ी चढ़ी है।

फिर भी यह मानना पड़ेगा कि इस नाटकका अधिकांश कल्पना-प्रसूत है और एक छोटेसे कथानक पर एक सर्वांगपूर्ण नाटककी रचना करनेमें ऐसा होना अनिवार्य है। नाट्यकलाकी दृष्टिसे यह कुछ अनुचित भी नहीं है। प्राचीन और अर्वाचीन, सभी श्रेष्ठ कवि इस मार्गका अनुसरण करते आये हैं।

परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि कवि कल्पनाओंकी तरंगमें मूल कथानकको सर्वथा छोड़कर इससे बहुत दूर बह गया है। नहीं, वह न तो नाटक-पात्रोंके समयको भूला है, न उनके स्वभावों और विश्वासोंको भूला है और न कहीं कोई ऐसी बात कहनेको बैठा है जो बेजोड़ या असंगत हो। यद्यपि वह ऋषि महर्षियों और देवी-देवताओंको अतिमानव या अमानवरूपमें जनताके सम्मुख उपस्थित नहीं करता है और न उस समयको ही सर्वथा पापदोषनिर्लिप्त—धोयापोंछा हुआ—समझता है, फिर भी उसे प्राचीन सभ्यता और समय पर यथेष्ट श्रद्धा है और जो सहृदय हैं वे इस बातको स्वीकार किये बिना न रहेंगे कि कविकी अमर लेखनीने महर्षि गौतमका जो उज्ज्वल महिमान्वित चरित्र अंकित किया है, वह अपूर्व और अद्वितीय है।

अहल्याका चरित्र ऐसी स्त्रियोंका चरित्र है जो युवावस्थाकी दुर्दम्य वासनाओंके फेरमें पड़कर चरित्रभ्रष्ट हो जाती हैं और अन्तमें दुःख दुर्दशाओंमें पड़कर पश्चात्तापकी आगसे शुद्ध हुआ करती हैं। इस चरित्रको लिखते हुए, कविने, बेजोड़-विवाहका दुष्परिणाम भी इशारेसे बतला दिया है और अन्तमें गौतमकी क्षमा और उदारता दिखलानेके लिए शापका जिक्र न करके अहल्याको स्वयं ही शोक और संतापसे नष्ट-चेतना 'पाषाणी' बतलाकर पुराणवर्णित अहल्याके शिला होनेका सुसंगत सामञ्जस्य कर दिया है।

चिरंजीव और माधुरीका चरित्र सर्वथा कल्पित है। परन्तु इनकी कल्पना केवल हास्यरसकी अवतारणाके लिए नहीं की गई है। गौतमके चरित्रकी महिमा दिखलानेके लिए भी ये पात्र आवश्यक थे और यह बात अन्तमें कविने जनकके मुखसे कहला भी दी है—"वह चरित्र धन्य है जिसके स्पर्शके जादूसे वेश्या सती हो जाती है, दस्यु साधु बन जाता है, * *।" वास्तवमें यह गौतमके ही चरित्रका प्रभाव था जो चिरंजीव जैसा हृदयहीन डाकू सुधरते सुधरते साधुप्रकृति बन गया और माधुरी जैसी वेश्या भी निःस्वार्थ प्रेमकी महासाधनामें लग गई।

इन्द्रका चरित्र एक कामुक और लम्पट राजाके जैसा है और उसका दरबार भी तदनुरूप है। देव देवियोंके चरित्रका इस प्रकारसे मुक्त लेखनीके द्वारा चित्रित किया जाना, बहुतोंको अरुचिकर होगा; परन्तु एक भोली भाली ऋषि-पत्नीको भ्रष्ट कर

देनेवाले व्यक्तिके लिए, हमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि उसे कोई स
कवि केवल देवता होनेके कारण, देवचरित्र भी बना देगा। कवि किसीका
नहीं मानते।

हम मूल लेखकके सुपुत्र श्रीयुक्त बाबू दिलीपकुमार राय महाशयके चिर
हैं जिनकी उदारतापूर्ण आज्ञासे हम इन नाटकोंको हिन्दी-संसारके सामने उप
करनेमें समर्थ हो सके हैं।

चैत्र शुक्ला ६,
सं० १९७७ वि०।

विनीत—
नाथूराम प्रेमी।
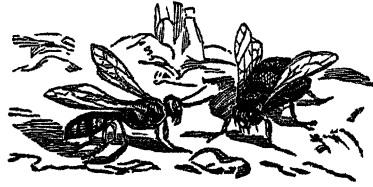
कुशीलव-गण ।

पुरुष ।

महर्षि—गौतम ।

राजर्षि—जनक ।

ब्रह्मर्षि—विश्वामित्र ।

महाराज—दशरथ ।

शतानन्द—गौतमका पुत्र ।

चिरंजीव—गौतमका शिष्य ।

इन्द्र, मदन, श्रीराम, लक्ष्मण, वशिष्ठ, वसन्त, अन्यान्य देवता, तापस-बालक, योगी, पुरवासी, पुरोहित, नौकर, दूत, आदि ।

स्त्री ।

अहल्या देवी—गौतमकी स्त्री ।

शची—इन्द्रकी स्त्री ।

रति—मदनकी स्त्री ।

माधुरी—गौतमकी चेली और चिरंजीवकी स्त्री ।

अन्यान्य देवियाँ, तापस-बालिकायें, और पुरवासिनियाँ आदि ।

पाषाणी ।

पहला अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान—राजर्षि जनकके महलकी ड्योढ़ी ।

समय—प्रातःकाल ।

[जनक और विश्वामित्र ।]

विश्वा०—राजर्षिजनक ! क्या यही ब्राह्मणत्व है ? ब्राह्मण जाति इसी सम्पत्तिका इतना दर्प करती है ? मैने अवहेलाके साथ, इशारे मात्रसे, तुच्छ तप करके उसे प्राप्त किया है और वैसी ही अवहेलाके साथ, विना-क्षोभके, अनायास, राहकी कीचड़में उसे मिट्टीके ढेलेकी तरह फेक दे सकता हूँ ।

जनक—विश्वामित्र ऋषि, अहंकार मत करो ! तुमने अगर ब्राह्मणत्व पाया है, तो वह ब्राह्मणजातिके विनयसे, अपने गुणसे नहीं ! और फिर भी यह याद रखना कि यद्यपि तुम ब्राह्मण हो चुके हो, मगर तुम्हारा आसन ब्राह्मणके बहुत नीचे है ।

विश्वा०—इसका प्रमाण ?

जनक—प्रमाण ? ऋषिवर, एकदिन नदीके उस पार गौतमके आश्रममें जाओ; वहाँ प्रमाण पाओगे !

विश्वा०—महर्षि गौतम ? जिनकी पत्नी अनिन्द्यसुन्दरी अहल्या है ! वे गृहस्थ हैं; उनका आसन मेरे ऊपर है ?

जनक—बहुत ऊपर है बन्धुवर ! इस बातको तुम अपनी आँखोंसे देखोगे ।

विश्वा०—सच ? अच्छी बात है ! देखूँगा ।

दूसरा दृश्य ।

स्थान—तपोवनके भीतर, वनकी गली ।

समय—प्रातःकाल ।

[तपस्वियोंके लड़के लड़की जा रहे हैं ।]

तपस्वियोंके लड़के लड़की गाते हैं:—

तपस्वी हम सब हैं बनके ।
रहें बनमें निर्मल मनके ॥
हरेभरे फूलेफले, उपवन या कान्तार,
प्रान्तर, पर्वत आदिमें, सुखसे करें विहार ॥
देखते दृश्य तपोवनके ॥ रहें० ॥
प्रात कोकिला कुंजमें, कुहूकुहू रट लाय ।
ढाल स्वर-सुधा कानमें हमें जगाती आय ॥
सुनें सरगम कोमल स्वनके ॥ रहें० ॥
दुपहरमें, तरुछाँहमें, बैठ सभी सानन्द ।
देखें सरितातटनिकट, उसकी गति अति मंद ॥
तुच्छ लगते सुख नंदनके ॥ रहें० ॥
संध्याको आकर प्रकृति, मधुर अधरमें हास ।
गीत सुनाती है अमर, बढ़ता है उल्लास ॥
सुनें मृदु गान पवन सनकें ॥ रहें० ॥

[चिरंजीवका प्रवेश ।]

चिरं०—यहाँ कौन कौन हैं ?

तपस्वियोंके लड़के लड़की—अजी हम लोग हैं ।

चिरं०—हुँः, तुम तो बड़े भारी लोग हो ! जाओ—

(लड़के लड़की जाना चाहते हैं ।)

चिरं०—अच्छा ठहरो, तुम्हीं लोगोंसे पूछना होगा । अरे सुनो सुनो ।

लड़केलड़की—क्या ?

चिरं०—अरे बता सकते हो, मैं क्या करूँ ? एक बड़े भारी सन्देहमें पड़ गया हूँ ।

१ लड़का—क्या सन्देह है महाशय ?

चिरं०—सन्देह है यह कि धमसे गिरता है, या गिरनेपर धमाका होता है ?

२ लड़का—सचमुच ही यह तो बड़े भारी सन्देहकी बात है ।

३ लड़का—तो यह आप महर्षिसे क्यों नहीं पूछते ?

चिरं०—पूछा था ।

३ लड़का—महर्षि क्या कहते हैं ?

चिरं०—महर्षि कुछ भी नहीं कहते ।

२ लड़का—और आप ?

चिरं०—मेरी यही राय है ।

४ लड़का—तो अब निर्णय कैसे होगा ?

चिरं०—यही तो गड़बड़ है । दर्शनशास्त्रके किसी भी मामलेका निर्णय नहीं होता । अरे तुम लोग दर्शनशास्त्रकी बातें सुनोगे ?

सब लड़के लड़की—कहिए, सुनें।

चिरंजीव गाता है।

वाह कैसी दुनिया मजेदार रंगीन।
बातें सभी इसकी कैसी हैं संगीन॥
दिनके पीछे रात, रातके पीछे दिनका सीन।
एकके ऊपर दो, तब बारह, एक और दो तीन॥
गर्मीमें है बेढब गर्मी, सर्दीमें है ठंडा।
जच्चा जनती बच्चा देखो, मुर्गी देती अंडा॥
गऊ पुकारे "बाँ बाँ" भैया, 'हुआ हुआ हो' स्यार।
काँय काँय काँ कौए करते, रहनाजी हुशियार॥
हाथीके ऊपर है हौदा, घोड़े पर है जीन।
धनियोंके सिर चिन्ता डाकिन, दीन बजावें बीन॥

२ लड़का—वाह, यह तो बड़ा भारी दर्शनशास्त्र देख पड़ता है!

चिरं०—क्यों! सब बातें ठीक हैं कि नहीं?

सब लड़के लड़की—बिल्कुल ठीक हैं, खूब ठीक हैं।

चिरं०—मैंने ही सोच सोचकर इनका आविष्कार किया है।

३ लड़का—सच? यह सब आपके ही आविष्कार हैं?

[विश्वामित्रका प्रवेश।]

विश्वा०—(चिरंजीवसे) यही क्या महर्षि गौतमका तपोवन है?

चिरं०—(विश्वामित्रको तलेसे ऊपर तक देखकर) आपको क्या जान पड़ता है?

विश्वा०—यही क्या महर्षिका आश्रम है?

चिरं०—नहीं तो क्या यह ताड़ीकी दूकान जान पड़ती है?

विश्वा०—तनिक सीधी भाषामें उत्तर दो तो क्या कुछ हानि है?

चिरं०—और नहीं देनेसे क्या हानि है?

विश्वा०—महर्षि कहाँ हैं?

चिरं०—क्यों, उनकी खोज क्यों करते हो बाबा? क्या कुछ प्रयोजन है?

विश्वा०—हाँ, प्रयोजन है; वे इस समय आश्रममें हैं क्या?

चिरं०—ना, वे बाघका शिकार करने गये हैं।

विश्वा०—बड़े ढीठ देख पड़ते हो! तुम कौन हो?

चिरं०—मैं भी पूछता हूँ—तुम कौन हो?

विश्वा०—मैं महर्षि विश्वामित्र हूँ।

चिरं०—मैं चिरंजीव शर्मा अर्शी हूँ।

विश्वा०—अर्शी कैसे?

चिरं०—मुझे अर्शरोग (बवासीर) होगया है। इससे अधिक अभी कुछ नहीं हुआ। लेकिन अर्श इतना अधिक हो गया है कि महर्षि होनेमें अब अधिक देर नहीं है।

विश्वा०—क्या? मेरे साथ दिल्लगी करते हो?

चिरं०—नाः, दिल्लगी करनेका नाता अभीतक नहीं जुड़ा।

विश्वा०—देखो! मुझे देखते हो?

चिरं०—देखता नहीं हूँ तो क्या; देख तो रहा ही हूँ।

विश्वा०—क्या देख रहे हो?

चिरं०—एकदम नव कार्तिकेय! एकदम मदन-मोहन! शरीर गोलाकार है! मस्तक लंबाईकी अपेक्षा चौड़ा अधिक है! चेहरेका रंग दाढ़ीके रंगसे टक्कर ले रहा है।

विश्वा०–देखो ! मेरे मनमें धीरे धीरे क्रोध पैदा हो रहा है !

चिरं०–सो अपने बारेमें ऐसा बखान सुनकर क्रोध न पैदा होगा, तो क्या प्रेम पैदा होगा ?

विश्वा०–शाप देकर तुमको भस्म कर दूँ क्या ?

चिरं०–घूसे मारकर तुमको रुईकी तरह धुनक डालूँ क्या ?

विश्वा०–ना, देखता हूँ–भस्म ही कर देना पड़ा। हर हर हर हर हर। (टहलने लगते हैं)

चिरं०–राम राम राम राम राम । (दूसरी ओर टहलने लगता है)

विश्वा०–राम राम क्यों कर रहा है ?

चिरं०–सुना है, रामका नाम लेनेसे भूतका भय नहीं रहता।

विश्वा०–मैं क्या भूत उतार रहा हूँ ?

चिरं०–नहीं तो क्या ब्याहके मंत्र पढ़ रहे हो ?

विश्वा०–तू बड़ा ही मूर्ख है ! जाः–(गला पकड़कर धक्का देते हैं)

चिरं०–अच्छा ! तो फिर आजा–देखूँ। (विश्वामित्रको मारने लगता है)

[गौतमका प्रवेश।]

गौतम–यह क्या चिरंजीव ? यह क्या कर रहे हो ?

चिरं०–(सकपकाकर) जी कुछ नहीं, इन महर्षिके साथ ज़रा ज़ोर कर रहा था।

गौतम–(विश्वामित्रसे) आप कौन हैं ?

विश्वा०–मैं महर्षि विश्वामित्र हूँ ।

चिरं०–सुन लिया गुरूजी ? महर्षिका ऐसा ही चेहरा होता है ? आजकल जिसे देखो वही महर्षि है !

विश्वा०—आप ही क्या गौतम ऋषि हैं ?

गौतम—इस दासहीका नाम गौतम है ।

चिरं०—ऐं—दासके क्या मानें ?

गौतम—चिरंजीव ! इनके चरणोंकी रज मस्तकमें लगाओ; यह एक अत्यन्त तेजस्वी महर्षि हैं ।

चिरं०—ऐं !—इसीके लिए तो इनके साथ मेरा झगड़ा हो रहा था ।

गौतम—यह अपने तेजके बलसे महर्षि हुए हैं । मैं इनके आगे कीटानुकीट हूँ । तुमने इनके साथ बहुत ही बुरा व्यवहार किया है । घुटने-टेककर इनसे क्षमाकी भिक्षा माँगो ।

चिरं०—हाँ ? (विश्वामित्रकी पीठपर हाथ रखकर उन्हें सिरसे पैरतक देखता है और फिर स्नेहके भावसे दो तीन बार पीठ ठोंकता है) महाशय, कुछ बुरा न मानिएगा । (प्रस्थान)

गौतम—(विश्वामित्रसे) महर्षिजी ! यह मेरा शिष्य है । इसकी ढिठाई माफ़ कीजिएगा । इसका हाल मैं फिर आपसे कहूँगा । इस समय दया करके मेरे आश्रममें पधारिए । नहीं जानता, किस पुण्यके बलसे आज सबेरे ही आप ऐसे महात्मा साधु पुरुषके दर्शन प्राप्त हुए ।

विश्वा०—(स्वगत) इतनी नम्रता ? (प्रकट) चलिए ।

(दोनोंका प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य ।
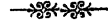
स्थान—महर्षि गौतमका तपोवन ।

समय—दोपहर ।

[अहल्या अकेली है और टहल टहलकर गाती है ।]

विमल यह निदाघ-प्रात सुंदर सजि आयो ।
मधुर गीत मृदु सुवास, समधिक शोभा-विकास,
निखिल भुवन छाय लियो, मुग्ध मन बनायो ॥
चलत स्निग्ध मंद पवन, गूँजि रहे कुंज-भवन,
मस्त ह्वै पपीहा गान ललित यह सुनायो ॥
कनक-बरन सूर्य-किरन, जगमगात नील गगन,
शान्तरूप अति अनूप, जगतकहँ दिखायो ॥
गगनचरनमाहिं लीन, धरनी संतापहीन,
किरनकान्तिमगन मनौं, रंक रतन पायो ॥
कैसी बिथा यह विराट, क्यहि बिन है जिय उचाट,
काँपि काँपि उठत हृदय, जैसे घबरायो ॥

[माधुरीका प्रवेश ।]

अहल्या—इतनी देरमें आई ? धन्य है तुम्हारी पूजा ! दोपहर हो गई है, सन्नाटा छाया हुआ है । माधुरी, चलो, बरगदके पेड़के तले ठंडकमें चलकर बैठें ।

माधुरी—चलो देवी ।

अहल्या—फिर वही अप्रिय संबोधन ! मैं गुरुपत्नी और तुम चेली अवश्य हो; लेकिन तो भी मैं तुम्हें सदासे अपनी प्यारी सखी समझती हूँ । आओ सखी, दो घड़ी एकान्तमें सन्नाटेमें बैठें; मैं तुमसे अपने

हृदयकी बात कहूँगी । मेरे हृदयपात्रमें लबालब भरी होने पर भी रुँधी हुई जीकी व्यथा जैसे आप ही आप उमड़कर बाहर निकली जारही है । इसीसे मैंने तुम्हें बुलाया है । बैठो यहीं । (बैठती है) सुनो ।

माधुरी–(बैठकर) कहो प्यारी सखी ।

अहल्या–कहूँगी । ठहरो । मगर कहूँगी क्या, तुम तो सब जानती हो–

माधुरी–ना, मैं कुछ नहीं जानती ।

अहल्या–अच्छा तो सुनो । याद है, मेरे ब्याहको हुए कितने दिन हुए ?

माधुरी–पाँच साल हुए होंगे ।

अहल्या–ठीक है । सखी, आज वही वैशाखकी पूनो है । तब मैं दस वर्षकी बालिका थी, आज मैं पन्द्रह वर्षकी युवती हूँ । आज वही दिन याद आता है ! उस समय मैं ब्याहका मर्म नहीं समझी थी । एकान्तमें बैठकर मैं सोचती थी कि इस पुण्य-परिणयसे मेरा जन्म सार्थक होगा । इतने दिनके बाद समझमें आया कि वह मेरा भ्रम था ।

माधुरी–भ्रम ! भ्रम था ! हे सौभाग्यशालिनी, तुम्हारा जन्म सार्थक नहीं हुआ ? जिसके ऐसे शिवके समान भोलानाथ धर्मात्मा स्वामी हैं उसका जन्म सार्थक नहीं है ?

अहल्या–आँख उठाकर देखो–सखी, केवल इस रूप, इस माधुरीको देखो । मेरे गलेमें इस पुष्पमालाको देखो । यह इस वक्षःस्थलके स्पर्शसे लज्जाके मारे क्या अधोमुखी नहीं हो गई है ? क्या यह निश्चय नहीं है कि इन कमलनालसी भुजाओंकी शोभा केवल कल्पवृक्षलतासे ही होनी चाहिए ! देखो, इस गेरुए पहनावेने कितने आग्रहसे मुझे घेर रक्खा है !

माधुरी–देखती हूँ ।

अहल्या—तुम्हीं बताओ, यह रूप, यह जवानी, यह जीवन व्यर्थ नहीं है ?—यह जगत् मेरे लिए नीरस और स्वादहीन नहीं है ? कभी मैं अपने मनमें सोचती हूँ कि क्वाँरेपनमें मैं अबकी अपेक्षा सुखी थी। मैं अकेली आप ही अपनी साथिन थी। आप ही हार गूँथकर अपने गलेमें डालती थी; आप ही गीत गाती और आप ही आनन्दमें मगन होती थी। पर्वतोंके शिखरोंपर, मैदानोंमें, बनोंमें, सुहावने कुंजोंमें, झरनोंके हरेभरे किनारेके स्थानोंमें घूमती थी—ढेरके ढेर फूल चुनती फिरती थी। स्वच्छ सरोवरमें झाँककर अपनी देवी-मूर्ति देखती थी। वसन्तके आनेपर कूहू शब्द सुनते ही शरीर नहीं काँप उठता था। मनके उल्लासके साथ चंपेकी किशोर कलियाँ उतारती थी; वे मानो मेरी उँगलियोंके स्पर्शसे फीकी पड़-जाती थीं। प्रचण्ड धूपमें दोपहरके समय वनकी घनी छायामें घूमती और बड़े ही सुखसे वनके फल गिराकर खाती थी। पिता यह कहकर झिड़कते-थे कि "घरमें इतना मधुरस रक्खा हुआ है, तू फल बटोरने कहाँ जाती है?" बरसातकी जलकणपूर्ण स्निग्ध वायु मेरे काले केशोंको उड़ाती थी। भोलीभाली मैं आँखें फेरकर तिरछी नज़रसे वह दृश्य देखती थी। फिर ऊपर काले मेघको निहारती थी, वह केवल मटमैले रंगका देख पड़ता था। वह बचपनका समय कैसा मधुर था! (लंबी साँस लेती है)

माधुरी—सखी, तुम यह क्या सोच रही हो! महर्षि गौतमकी पत्नी होनेके कारण तुम बड़ी ही भाग्यशालिनी हो। वही गौतम—जो धर्ममें, ज्ञानमें, विद्यामें, विभवमें अन्य मनुष्योंसे उतने ही ऊँचे हैं जितने कि नक्षत्रगण जुगनूओंसे ऊँचे हैं।

अहल्या—माधुरी, मैं यह नहीं कह सकती कि वे ज्ञानी नहीं है,

वे शास्त्रविशारद नहीं हैं, या वे धार्मिक नहीं हैं ! किन्तु सखी, रमणीका हृदय उनका प्रार्थी नहीं हो सकता ! जाने दो, अब इस निष्फल विलापकी जरूरत नहीं है । तुम समझ नहीं सकोगी । अथवा इस पछतावेसे ही क्या फल होगा ? (एक बहुत लंबी साँस छोड़ कर) नहीं जानती, आज हृदय क्यों इतना चंचल और कातर हो रहा है— क्यों आज मैंने तुमको अपने हृदयकी गूढ़ वेदना सुनानेके लिए बुलाया है ! रहने दो—देखो माधुरी, यह जूहीका हार सूख गया, नया हार गूँथ दो । इस दाहने हाथमें लता-बलय तनिक अच्छी तरह बाँध दो— खुल खुल जाता है ।

माधुरी—आओ, और पास आओ ! देवि, यह इतना साज-सिंगार क्यों करती हो ? प्रिय सखी, तुम बिना सिंगारके ही सबसे बढ़कर मनको मोह लेती हो; यह क्या तुम नहीं जानतीं ? कौन मूढ़ मनुष्य पद्म-पत्रमें कूचीसे रंग भरेगा ? बिजलीके प्रकाशको दीपककी रोशनीसे दिखाना किस बुद्धिमानको ठीक जँचेगा ?

अहल्या—(लंबी साँस छोड़कर) हाय प्यारी सखी !

[शतानन्दका प्रवेश ।]

शता०—मा ! मा !

अहल्या—क्यों बेटा ?

शता०—दादाने मुझे मारा है ।—मौसी, दादा मुझे सदा मारा ही क्यों करते हैं ?

माधुरी—दादा बड़ा दुष्ट है । तुम उसके पास न जाना ।

अहल्या—जान पड़ता है, तूने भी कुछ ऐब किया होगा ?

शता०–ना। मैंने कहा–दादा, मिठाई खाओगे? बस, दादाने पटा-कसे मेरे गालपर थप्पड जमा दिया!

अहल्या–(हँसकर) तू खूब झूठ बोलना सीख गया है।

माधुरी–किस जगह पर मारा है? आ फूँक डाल दूँ।

शता०–इस जगह मारा है, इस जगह मारा है, इस जगह मारा है, इस जगह मारा है। (इस तरह कहकर कई जगह दिखाता है।)

माधुरी–आ भैया हाथ फेर दूँ। (हाथ फेरती है।)

माधुरी गाती है।

आप हि आप मगन, जो चाहत, कहत फिरत, मन मोद बढ़ाए। आप० ॥
खिलखिल हँसत आप चलि गिरि उठि, चलो जात निज मौज मनाए।
वाके विहँसत मानिक बिखरत, आँसुन ज्यों मोती बरसाए ॥
नयनन निरखत बूँदन अँसुआ, रहो न जात बिना उर लाए।
प्यार दुलार करति याहींसों, धन्य भाग जिन बालक पाए ॥

शता०–मा, पिताजी कहाँ हैं?

अहल्या–मैं तो नहीं जानती। माधुरी, जानती हो, वे कहाँ हैं?

माधुरी–वह महर्षि विश्वामित्रको तपोवन दिखानेके लिए ले गये हैं।

शता०–ये विश्वामित्र कौन हैं मा?

अहल्या–वे भी तुम्हारे पिताकी तरह एक ऋषि हैं।

शता०–मगर उनके अंगोंमें इतने रोएँ क्यों हैं?

अहल्या–मैं नहीं जानती। जा—

(शतानन्दका प्रस्थान।)

अहल्या–नहीं जानती माधुरी, किन पापोंसे तुमको ऐसा पशु स्वामी मिला है।

माधुरी—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, उनकी निन्दा न करना; मैं उनको प्यार करती हूँ ।

अहल्या—सखी, जलाओ नहीं । तुम उसे प्यार करती हो ? किस गुणके कारण प्यार करती हो ? माधुरी, मैं नहीं जानती, तुमने कैसे अपनी इच्छासे उसके साथ ब्याह करना चाहा था ?

माधुरी—बहन, महर्षिकी आज्ञासे ऐसा हुआ है; अपनी इच्छासे नहीं । निष्काम साधना करनेके लिए विवाह-धर्मकी सृष्टि हुई है । महर्षिने कहा—"विवाह विलास नहीं है; प्रेम विषय-लालसा नहीं है । पति और पत्नी बाज़ारकी चीज़ नहीं हैं कि वे छाँट लिये जायँ, अथवा दाम देकर खरीदे जासकें । विवाह एक कर्तव्य है । प्रेम एक निष्काम साधना है ।"

अहल्या—झूठ, बिल्कुल झूठ बात है ! हाय कैसी विडम्बना है—प्रेम साधनाकी चीज़ है ? आज्ञा उसे नियमित कर सकती है ? उसे क्या कुएँके जलकी तरह खोदकर निकालना पड़ता है ? नहीं माधुरी, प्रेम गेरूके झरनेकी तरह पत्थर तोड़कर आप ही निकलता है !—(लंबी साँस छोड़कर) चलो, घर चलें । (दोनोंका प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—गौतमके आश्रमका बाहरी भाग ।

समय—दोपहर ।

[विश्वामित्र और चिरंजीव बैठे हैं ।]

विश्वा०—तुम्हारी कहानी बड़ी ही विचित्र है ।

चिरं०—बड़ी ही विचित्र है ! मैंने सोचा, महर्षि गौतम राजा जनकके महलसे आ रहे हैं, ज़रूर उनके हाथमें कुछ माल है। पीछे जब महर्षिने अपने शरीर परसे उतारकर रेशमी दुपट्टा और राजर्षिसे उपहारमें पाया हुआ सोनेका कमंडलु, दोनों चीज़ें, बिना किसी संकोचके हँसते हँसते, मुझ असहाय और धरतीपर पड़े हुए शत्रुको सौंप दीं, तब महर्षिजी, मैं तो विस्मयसे भौंचक्का सा रह गया !

विश्वा०—किसके प्रहारसे तुम धरती पर गिर पड़े थे ?

चिरं०—राजाके सिपाहीने मुझे मारा था। वह महर्षिके पीछे पीछे अज्ञात भावसे छिपा हुआ आ रहा था। ऋषिको भी अपने पीछे उसके आनेका हाल नहीं मालूम था, और मैंने भी पहले उधर कुछ लक्ष्य नहीं किया। जैसे ही ज़ोरसे मैंने महर्षिका गला पकड़ा, वैसे ही सिपाहीने खोपड़ीपर लाठी जमा दी और मैं वर्षामें पुरानी छतकी तरह अरराकर धरतीपर गिर पड़ा ! जैसे घोड़ेकी पीठपर चाबुक-सवार बैठता है वैसे ही मेरी पीठपर सिपाहीराम जम गये। अन्तको महर्षिने दया करके सिपाहीसे कहा—"सिपाही, छोड़ दे, चोरको छोड़ दे।" सिपाहीने छोड़ दिया। ऋषिने तुरन्त रेशमी दुपट्टा और सोनेका कमण्डलु मेरे हाथमें दे दिया; और कहा—"दस्यु, मेरे पास और कुछ नहीं है; अगर होता तो वह भी मैं अवश्य तुझे दे डालता। सोना-चाँदी दुर्लभ है, लेकिन सुख अत्यन्त सुलभ और सहज है। वह सुख अगर तू चाहे, तो मैं बहुतसा दे सकता हूँ। भाई, कभी मेरे आश्रममें आना।" विश्वामित्रजी, उस गद्गद्स्वर और अपार करुणासे स्निग्ध—प्रेमसे आर्द्र—भाषाने मेरे हृदय पर ऐसा असर डाला कि उसी दिन मैं महर्षिका शिष्य हो गया। ऋषिने ऐसा मुझे निर्लोभ बना

दिया है कि उसी दिनसे मैं इस तपोवनमें, जाड़ेमें ठिठरे हुए नागकी तरह, निर्जीव निर्विष होकर पड़ा हुआ हूँ। तो भी कभी कभी असावधानता हो जानेपर पहलेकी पाप-प्रवृत्ति हृदयमें जग उठती है। जी चाहता है, एकान्तमें—निरालेमें गुप्तरूपसे महर्षिका गला घोटकर उन्हें यमपुरीका पाहुना बना दूँ; यद्यपि इसमें मुझे ज़रा भी लाभ नहीं, क्योंकि गौतम अत्यन्त दरिद्र हैं—उनके पास कुछ भी नहीं है।

विश्वा०—और वह युवती कौन है ? उसका क्या नाम है ?

चिरं०—उसका नाम माधुरी है। ऋषिवर, उसका हाल आपसे क्या कहूँ—बड़ा विचित्र है ! सुनिएगा ?

विश्वा०—कहो।

चिरं०—यह स्त्री मिथिलापुरीकी सबसे श्रेष्ठ वेश्या थी। एकदिन इस मायाविनीने न जाने किस कुघड़ीमें—किस कुचक्रीके चक्करमें पड़कर—महर्षि गौतमको राहमें रोका और रूपकी छटा, मधुर कण्ठ, उज्ज्वल हास्य, सुगन्धित श्वास आदिसे उन्हें डिगाना चाहा। पर सब चेष्टा व्यर्थ हुई। उलटे ऋषिके ही चरित्रके चक्करमें पड़कर माधुरीने वेश्यावृत्ति छोड़ दी। सजा हुआ महल, अमोल अलंकार और सैकड़ों-हज़ारों चाहनेवाले छोड़कर वह उसी घड़ीसे ऋषिकी चेली हो गई। अन्तको एकदिन माधुरीने, मुझ नीच, भयानक, बीभत्स आकारवाले डाकूको, न-जाने क्या मनमें समझकर, अपना पति बना लिया। महर्षिजी, उस दिन मैं दिनभर लगातार ज़ोरसे ठहाका मार मारकर हँसा ही किया। मैंने कहा—अच्छी जोड़ी मिली ! चोरकी स्त्री वेश्या ! महाशय, उसी दिनसे माधुरी मेरी पत्नी है, मैं उसका पति हूँ।

विश्वा०—गौतमके ब्याहके पहलेकी यह घटना है ?

चिरं०—उससे बहुत पहलेकी है ।—ऋषिवर, वह देखिए, गौतमजी अपनी स्त्रीके साथ इधर ही आरहे हैं ।

विश्वा०—ठीक है ।

[गौतम और अहल्याका प्रवेश ।]

गौतम—महर्षिजी, चरणसेवा करने आया हूँ—आज्ञा कीजिए ।

विश्वा०—गौतम, मुझे अब और कुछ न चाहिए । तुम्हारा यह-आश्रम बड़ा ही निस्तब्ध, शान्त, पवित्र और सुन्दर है !—किन्तु एक-दम निर्जन है । बन्धुवर, तुम्हें यहाँ सदा अच्छा लगता है ?

गौतम—लगता है । यह निर्जन आश्रम जन्मसे ही मेरे मनको भाने-वाला है । मेरा जीवन इसमें ओतप्रोत है । महर्षि, तुम नहीं जानते, इसके हर वृक्ष, हर राह, हर शिलाखण्डमें कितनी बीतीहुई घटनाएँ अङ्कित हैं ?

विश्वा०—तुम्हें सुन्दर पुरी, महल, फाटक, रथ, हाथी, घोड़े, बाजार आदि क्या अच्छे नहीं लगते ?

गौतम—नहीं मित्र, उनकी अपेक्षा ये हरेभरे खेत, मैदान, मनोहर वन, झरने और पक्षी बहुत अच्छे लगते हैं ।

विश्वा०—(अहल्यासे) देवि, तुम्हें भी क्या यह वनवास ही पसंद है ?

अहल्या—स्वामीकी इच्छा ही स्त्रीकी सम्मति है ।

विश्वा०—सच ! मैं तो कभी कभी आश्रमसे जाकर महलोंमें रहना पसंद करता हूँ । विचित्रताके विना जीवन बिल्कुल ही फीका लगता है ।

गौतम–प्रभो, तुम्हारे सभी काम और बातें असाध्यकी साधना है। कभी बहुत दिनतक तुम तप किया करते हो, कभी लोगोंकी बस्तीमें जाकर उसी तपके बलसे पराया हित और उपकार करते फिरते हो। और मैं आत्मपर हूँ; सदा अपने सुखकी चिन्तामें पड़ा रहता हूँ। कहाँतक कहूँ बन्धुवर, मैंने तुमसे बहुत कुछ सीखा है। विश्वामित्रजी, तुम धन्य हो; और तुम्हारे तपकी महिमा भी धन्य है!

चिरं०–बेशक धन्य है! कौन जानता था कि घने रोमोंसे ढके हुए इस काले चमड़ेके नीचे इतने बड़े ऋषि छिपे हुए हैं!

विश्वा०–(गौतमसे) तुम बहुत ही गरीब हो?

गौतम–हाँ, बिल्कुल ही गरीब हूँ।

विश्वा०–राजा दशरथको जानते हो?

गौतम–नाम सुना है।

विश्वा०–उनके महलमें मेरा सदा आना-जाना होता है। मेरे साथ अयोध्यापुरीको चलो।

गौतम–क्यों?

विश्वा०–ढेरके ढेर रत्न तुम्हें दिला दूँगा।

गौतम–रत्न? रत्न लेकर क्या करूँगा?

विश्वा०–तुम बिल्कुल भोले और नासमझ हो! धन-रत्नसे अच्छे अच्छे स्वादके पकवान, तरह तरहकी मिठाइयाँ, अनमोल गहने, रमणीय बाग-बगीचे, महल, कमनीय वारांगना आदि ऐशआरामके सामान खरीदे जाते हैं।

गौतम–मैं उन्हें नहीं चाहता। निर्जनमें साधारण परिश्रमसे मिले

हुए वनके कंद-मूल-फल खानेसे शरीर पुष्ट होता है । मृगाजिन बल्कल आदि जो कुछ मिलता है सो पहन लेता हूँ। अनुपमा सुकुमारी पतिव्रता पत्नी अहल्या है। जीवनमें मुझे किसी बातकी कमी नहीं है। मैं धन-रत्नकी राशि लेकर क्या करूँगा ?

विश्वा०—(स्वगत) यह ब्राह्मण इतना निर्लोभ है ? अथवा अतुल रूप और लावण्यवाली सुन्दरीने इसको अपना पति बनाया है, इसीसे यह बाहरी संपत्तिकी ओरसे इतना उदासीन है ? सच है, जिसके घरमें ऐसी भार्या है उसको किस बातकी कमी है ?

चिरं०—देखो, प्रभु-पत्नीकी ओर यह ऋषि कैसा ताक रहा है ! जान पड़ता है, जैसे अभी गुरुपत्नीको खा जायगा ! मुँह ऐसा फैलाये है, जैसे बेसनके लड्डूकी तरह उठाकर अहल्याको अपने बड़े भारी पेटके गढ़ेमें रख लेगा !

विश्वा०—(अहल्यासे) देवी, तुम क्या अपने इस गोरे शरीरको स्वर्णके अलंकार, मणि-मोती आदिसे सजाना नहीं चाहती हो ? हीरेके जड़ाऊ सोनेके कंगन पहननेको जी नहीं चाहता ? मत्थेपर रत्नकी कलंगी लगानेकी इच्छा नहीं होती ? पैरोंमें घुँघरूदार चाँदीके बिछुए, हाथोंमें मणिजटित केयूर और गलेमें मोतीके हार पहननेको मन नहीं चाहता ?

चिरं०—क्षमा करो ऋषिवर ! बस हो चुका । क्यों बेकार पति-पत्नीके बीचमें कलहका बीज बो रहे हो ? पत्नीके आगे अप्राप्य अन-मोल रत्नों और आभूषणोंकी यह लंबी सूची पेश करके तुम क्या करना चाहते हो ?

गौतम—चलो चलें बन्धुवर, आश्रमके भीतर पधारो। गर्म धूल उड़ने लगी; घाम कड़ा हो आया।

विश्वा०—हाँ महर्षि, चलो। (अहल्यासे) चलो देवी! अच्छी बात है। (स्वगत) इस पत्नीके वियोगको गौतम सह सकते हैं या नहीं, इसकी परीक्षा करनी होगी।

(गौतम अहल्या और विश्वामित्रका प्रस्थान।)

चिरं०—(पीछे जाते जाते) हूँ, भैया चिरंजीव, तुम विना बुलाये ही चलो।—इस काले चमड़ेके नीचे इतने बड़े ऋषि है?—आश्चर्य है!! अद्भुत है!!! (प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य।

स्थान—तपोवनका किनारा।

समय—दोपहर।

[दो तापस-बालक खड़े हैं।]

१ ता० बा०—सुनता हूँ, यह विश्वामित्र ऋषि बड़े तेजस्वी हैं।

२ ता० बा०—कैसे?

१ ता० बा०—यह पहले एक क्षत्रिय राजा थे; तपोबलसे ब्रह्मर्षिपद पागये हैं।

२ ता० बा०—रहने दो अपना ब्रह्मर्षिपद। उन्हें देखकर मेरे मनमें तो रत्तीभर भी भक्तिभाव नहीं होता।

१ ता० बा०—हमारे मनमें उनकी भक्ति भले ही न हो, मगर मह-

र्षिजी तो उनके गुणोंपर मुग्ध हो रहे हैं ! सुनता हूँ, विश्वामित्रके तपोबलका हाल सुनकर महर्षि भी किसी दूरके स्थानपर तप करने जानेवाले हैं।

२ ता० बा०—सच ?

[अन्य एक तापस-बालकका प्रवेश ।]

३ ता० बा०—अजी, चिरंजीव बड़ा मजा कर रहा है !

२ ता० बा०—क्या ?

३ ता० बा०—न जानें क्या पीकर अंटसंट बक रहा है। वह लो, इधर ही आ रहा है।

[चिरंजीवका प्रवेश ।]

चिरं०—वाह वाह, विश्वामित्र ऋषिके पेटमें इतने गुण भरे पड़े हैं ! वाह बाबा, कैसा बढ़िया सोमरस बनाया है ! हमारे महर्षि तो, बस, एकदम वज्रमूर्ख हैं !

१ ता० बा०—यह क्या कह रहे हो चिरंजीव ?

चिरं०—अरे भाई वज्रमूर्ख नहीं हैं तो और क्या हैं ! बाबा विश्वामित्रने अपने हाथसे ऐसा दिव्य सोमरस बनाकर दिया तो भी उन्होंने नहीं पिया ! अरे अगर सोमरस ही न पियोगे तो फिर महर्षि बननेहीकी क्या जरूरत थी ?—अरे ओरे, सुनो, मैं तो अब इन्हीं विश्वामित्रका शिष्य हो जाऊँगा।

२ ता० बा०—सच ? कहते क्या हो ?

चिरं०—हाँ—हो जाऊँगा ! मगर बात यही है कि विश्वामित्र ऋषि दर्शनशास्त्र नहीं जानते। इस दर्शनशास्त्रपर मुझे बड़ा प्रेम है।

३ ता० बा०—जरूर !

चिरं०—अरे ओरे छोकरो, दर्शनशास्त्रकी एक बात सुनोगे ?

३ ता० बा०—सुनें !

चिरंजीव गाता है—

भूचर खेचर जलचर किन्नर, देव दैत्य गंधर्व निशाचर—
इंद्र चंद्र पावक सचराचर, ब्रह्मा सुरपति विष्णु महेश्वर—
पन्नग उरग तुरंग भुजग जग, विहग कुरंग पतंग वायुचर—
भूत प्रेत मातंग यक्षकुल, ब्रह्म दैत्य राक्षस पिशाचनर—
जो हैं जहाँ, कान सो ताने, सुनो गान यह महाभयंकर—
लेकिन इसके माने, जाने कौन, हुए क्या ? जाने ईश्वर—
चरखासा घूमे यह सब जग, मिले प्रमाण पिये मद सत्वर—
इसके लिए सभी क्यों सोचा करते ? चैन न पावें दमभर।

(अन्य एक तापस बालकका प्रवेश।)

४ ता० बा०—यह क्या चिरंजीव शर्मा, यह क्या कर रहे हो ?

१ ता० बा०—चिरंजीव शर्मा इस समय ज़रा मज़ेमें हैं।

२ ता० बा०—इनका अभी हाथ-पैर-मुँह मटकाना अगर कहीं तुम देखते !

३ ता० बा०—और गाना कैसा बढ़िया गाया !

चिरं०—तुम बड़ा गोलमाल और शोर करते हो। इधर देखो !

३ ता० बा०—क्या देखें महाशय ?

चिरं०—देखो—मैं सशरीर स्वर्ग जा रहा हूँ। विश्वामित्र ऋषिने कहा—"यह सोमरस पीनेसे लोग सशरीर स्वर्ग जाते हैं—ज़रा सा पियोगे भैया चिरंजीव ?" मैंने कहा—"कहाँ, दिखा दो; मगर विश्वामित्रजी, तुम हम अगर स्वर्ग जावें तो सशरीर न जाना ही अच्छा। राहमें इस शरीरका

बदल डालना ही अच्छा होगा । सशरीर न जानेमें लाभके सिवा हानि क्या है ? यह चेहरा लेकर स्वर्ग जानेमें कुछ सुविधा होते नहीं देख पड़ती ।" इतना कहकर ज़रा सा सोमरस पी गया । पीते ही बस क्या कहूँ भाई, चिपटी पृथ्वी गोल देख पड़ने लगी, आकाशने अट्टहास शुरू कर दिया, पातालपुरी परी बनकर नाचने लगी—और मैं सशरीर स्वर्गको उड़ चला ।

२ ता० बा०—जी ! तब तो कहना चाहिए, मामला संगीन हो गया है ।

चिरं०—संगीन नहीं भइया रंगीन कहो । बलिहारी सोमरसकी ! देखते हो तुम लोग ?

३ ता० बा०—क्या देखें महाशय ?

चिरं०—(मद्यपात्र दिखाकर) कैसा रंग है !—कैसी साफ है !—कैसी लहलहाती हुई है ! कैसा फेना है ! वाहवाह ! अरे तुम तनिक तनिक पियोगे ?

१ ता० बा०—जी नहीं ।

चिरं०—तनिक चखकर देखो न । इसमें कड़वा, तीखा, खट्टा, मीठा, कसैला वग़ैरह सभी रस हैं ।

२ ता० बा०—नहीं महाशय !

चिरं०—अगर तुम लोग पीते तो बहुत अच्छा करते ।

३ ता० बा०—नहीं ।

४ ता० बा०—तुम्हीं इतना यह भी पीजाओ। देखें, क्या मज़ा दिखाती है ।

चिरं०—हूँ ! जान पड़ता है, तुम सब पाजी मन ही मन हँस रहे हो।

(तापस बालक हँसते हैं ।)

चिरं०—ऐं ऐं—मुँहपर ही हँस रहे हो !

चिरंजीव गाता है—

स्वाँग समझते हो क्या मुझको ? मुझसे बदमाशी ऐसी ?
देख नया ढंग मेरा हँसते, हत्तेरी ऐसीतैसी !
क्या समझो, लड़खड़ा रहे हैं मेरे पैर ?—तुम्हारा सिर !
झूठ बात है—कभी नहीं—सिरगया तुम्हारा ही है फिर !
मैं तो अपनी इच्छाहीसे, नए ढंगसे फेकूँ पैर—
रंगविरंगी चाल निकाली—खड़े हुए बस देखो सैर !
क्या समझो तुम, मतवाला हो, अंटसंट मैं बकता हूँ ?
जानबूझकर ठीक न बोलूँ, मैं लेक्चर दे सकता हूँ ॥

(गाते गाते उग्रभाव धारण करता है ।)

१ ता० बा०—मार डालेगा—
२ ता० बा०—खा लेगा—
३ ता० बा०—भागो भागो—
४ ता० बा०—अरे बावारे—

चिरं०—इन बदमाशोंको नरकमें भेजूँगा । (फिर गाता है—)

"स्वाँग समझते हो क्या मुझको ? मुझसे बदमाशी ऐसी ?
देख नया ढंग....................................."

[माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी—प्रभू, यह क्या कर रहे हो ?

चिरं०—(हताशभावसे) जाः—नशा उड़ गया ! सशरीर स्वर्ग जानेकी बात यों ही रह गई । तू इस समय आई क्यों ?

माधुरी–क्या शराब पी ली है ?

चिरं०–शराब क्या री ? सोमरस—स्वयं विश्वामित्र ऋषिका तैयार किया हुआ ।

माधुरी–स्वयं विश्वकर्माके हाथकी तैयार की हुई होनेपर भी वह शराब ही है ।

चिरं०–अच्छा तो शराब ही सही–शराब ही सही ।

माधुरी–प्रभू, शराब पीना अच्छा नहीं । महर्षि गौतम उसे नहीं पीते।

चिरं०–महर्षि गौतम बिलकुल भण्ड, षण्ढ, लंठ मूर्ख है । यदि मैं इस समय उसे पाऊँ तो दो हाथ जमाये बिना न रहूँ ! लेकिन जब वह यहाँ नहीं है तब उसके बदले ले तेरी ही (प्रहार) पूजा कर दूँ। (मारता है)

माधुरी–नहीं बस करो, बस करो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ ।

[विश्वामित्रका प्रवेश ।]

विश्वा०–चिरंजीव ! छिः, बड़ी लज्जाकी बात है !

चि०–क्या लज्जाकी बात है ?

विश्वा०–अपनी स्त्रीको मार रहे हो ?

चि०–अपनी स्त्रीको न मारूँ तो क्या पराई स्त्रीको मारूँगा ?

विश्वा०–स्त्रीके ऊपर हाथ चलाते हो ? छी-छी !

चिरं०–यह स्त्री नहीं है–मर्दका बाबा है !

विश्वा०–क्यों ? तुम्हारी स्त्रीने क्या अपराध किया है ?

चिरं०–तुम्हारा क्या मतलब है ? तुम क्यों यह पूछताछ कर रहे हो ? देखो विश्वामित्र ऋषि, तुम चाहे ब्रह्मर्षि हो, और चाहे देवर्षि हो,

अगर इस तरह दालभातमें मूसलचंद बनकर, पति-पत्नीके बीचमें पड़कर, उनके उचित दाम्पत्य-कलहमें बाधा दोगे तो यह—देखते हो—

(एक टूटीहुई वृक्षकी शाखा उठाकर घुमाता है और साथ ही साथ हुमकता है ।)

[गौतमका प्रवेश ।]

गौतम—यह क्या है चिरंजीव ?

चिरं०—ऐं-ऐं—वही तो—

विश्वा०—चिरंजीव सोमरस पीकर ज़रा रंगमें आगया है ।

चिरं०—हाँ—सो—वह सोमरस विश्वामित्र ऋषिका ही बनाया हुआ था ।

गौतम—माधुरी, तू रो रही है ।

विश्वा०—चिरंजीवने इसे बेतरह मारा है ।

चिरं०—मारा है ? तो उसमें किसका दोष है ? आपहीने तो कह सुनकर मुझे सोमरस पिलाया । मैं किसी तरह नहीं पीता था; आप "चिरंजीव पियेगा ? चिरंजीव पियेगा ?" कहकर मेरे पीछे पड़ गये । मैं कबतक अपने जीको काबूमें रखता ? आखिर यह शरीर रक्तमांसहीका तो है !

विश्वा०—मैं परीक्षा कर रहा था कि तुममें मानसिक बल कितना है ?

चिरं०—क्यों ? क्या उसे जाने बिना आपको नींद नहीं पड़ती थी ?

गौतम—चिरंजीव, क़सम खाओ कि अब तुम कभी मदिरा नहीं पियोगे ।

चिरं०—आँय—खुद विश्वामित्र जब पीते हैं—

गौतम—महर्षि विश्वामित्रको जो सोहता है, सो तुम्हें नहीं सोह सकता । कूड़ा अग्निके शरीरको कलुषित नहीं करता, मगर पानी उससे गंदा हो जाता है । क़सम खाओ कि अब तुम यह काम नहीं करोगे ।

चिरं०—ऐं—अच्छा—वही सही ।　　(प्रस्थान ।)

गौतम–माधुरी; मैं परदेस जाता हूँ। तुम अपनी गुरुपत्नीको देखना।

माधुरी–मैं प्राणपणसे उनकी सेवा करूँगी। आप कब लौटेंगे?

गौतम–इसका कुछ ठीक नहीं है। संभव है कि एक वर्षके बाद लौटूँ। मैं अब तुम्हारी गुरुपत्नीसे बिदा होने जाता हूँ। (विश्वामित्रसे) बन्धुवर, तैयार होइए, मैं शीघ्र आता हूँ।

(सबका प्रस्थान।)

छठा दृश्य।

स्थान—तपोवनका एक किनारा।

समय—प्रातःकाल।

अहल्या अकेली।

(गाती है।)

अंधकारमहँ कबहुँ कि हीरा पूरी दमक दिखावत है ?
हाय बरफ पर फूल रँगीलो कबहुँ कि फूलन पावत है ?
कहुँ गुनीको हाथ लगे बिन बीना बजत, रिझावत है ?
प्रेम अनादर अवहेलासों सूखि, न सुख सरसावत है॥
मलयवायुके चले बिना कहुँ कोयल बोल सुनावत है ?
प्रेम निराशा भय वियोगसों प्रेम मरन नहिं पावत है।
अवहेला यातना घृणासों मृत्यु प्रेमकी आवत है॥

[गौतमका प्रवेश।]

गौतम–अहल्या !

अहल्या–(चौंककर) कौन ?–यह क्या प्रभू! इस वेषसे? यहाँ?

गौतम–प्यारी, मैं तुमसे बिदा होने आया हूँ।

अह०—बिदा होने ?—हूँ—समझ गई। अच्छी बात है।—कहाँ जाते हो ?

गौत०—बहुत दूर, परदेश।

अह०—क्यों ?

गौत०—प्रियतमे, वहाँ तपस्या करूँगा।

अह०—तपस्या ? किसकी—कैसी ? क्या घरमें बैठकर तपस्या नहीं होती ?

गौत०—गृहस्थाश्रममें हज़ारों बन्धन हैं, माया-मोह और नित्य संसारकी अनेक चिन्ताएँ घेरे रहती हैं। इसीसे, प्रिये, अकेले निर्जन दूरके स्थानमें—एकान्तमें—जहाँ मनुष्यका शब्द नहीं सुन पड़ता—सन्नाटेकी उस जगहमें तपस्या करूँगा।

अह०—जाओ।

गौत०—प्रिये, प्रसन्न मनसे बिदा करो!

अह०—यह तो बताओ, मुझे किसके पास छोड़ जाओगे ?

गौत०—सती स्त्रियाँ पतिकी याद मनमें रखकर रहती हैं।

अह०—प्रभू, केवल ध्यान करनेसे आकांक्षा नहीं मिटती। हाय, सरोवरका चित्रपट देखनेसे ही कहीं प्यास बुझती है! हायरी पुरुषोंकी ममताहीन जाति! कठिन पुरुष! नित्य वियोगमें, मिलनमें, हम तुम्हारी याद करेंगी, और तुम जब जी चाहेगा तब आओ-जाओगे—स्वाधीन तरंगकीतरह सहनशीलताके बलुहे किनारेपर टक्करें मारते हुए आतेजाते रहोगे! पास क्यों आते हो ? रमणीके रूपका ही ध्यान करके दूर क्यों नहीं रह सकते ? जब शरीर जीर्ण हो जाता है, बुढ़ापेकी अन्तिम दशा होती है, तब भी क्यों छाँटकर पल्लवित वृक्षकी डालीसे खिलती हुई फूलकी

कली उतार लेते हो? उसे नाचते, हँसते, माताका दुग्ध-रस पीकर बढ़ते, दूरसे देखकर ही तुम लोग क्यों नहीं सुखी होते? तुम लोग बड़े ही स्वार्थपर हो!

गौत०—अहल्या, मैं ब्राह्मण हूँ। क्या मैं सदा प्रेयसीका आँचल पकड़कर पड़ा रहूँ? अपने कर्तव्यको भूल जाऊँ?

अह०—(उठकर) अगर नहीं रहना था तो फिर ब्याह ही क्यों किया था? अपने इस शिथिल शीर्ण बुढ़ापेके साथ मेरी जवानीको क्यों बाँधा था? इस मुँहकी ओर आँख उठाकर देखो—यह नई उठती जवानी, यह उमड़ता हुआ रूप, यह अतृप्त आकांक्षा, यह उमंगसे भरा हृदय, देखते हो?—क्यों नई सुकोमल फूली हुई पल्लवित श्यामलताको इस नीरस सूखे हुए ठूँठमें बाँधा था? (रोती है)

[चिरंजीवका प्रवेश।]

चिरं०—(स्वगत) ठीक वही देख पड़ता है जो सोचा था। मैं जानता था कि वह बड़ेबड़े रोएँवाला भालू ऐसा ऋषि जरूर कोई आफत लावेगा! (प्रकट) महर्षिजी, बाहर कुटीके द्वारपर विश्वामित्र ऋषि तैयार खड़े है—आपकी राह देख रहे हैं।

गौतम—तो प्यारी जाता हूँ।

अह०—प्रभू, तुम जाओ या रहो—अहल्याके लिए एक ही बात है। तुम्हारे हृदयमें स्नेह नहीं है! तुम्हारे अधरमें सुधा नहीं है! तपस्याके शुष्क कर्तव्यके लिए ही तुम्हारा जीवन है। मेरा जीवन संभोग चाहता है। तुम्हारे जीवनका व्रत पुण्यका संचय है; मेरे जीवनका कार्य पुण्य-का व्यय है। दोनोंकी गति दो ओर जुदीजुदी है। इस जीवनमें हम दोनों

कभी नहीं मिल सकेंगे । जाओ; तुम्हारे जानेसे हमारे जीवनका स्वाभाविक गंभीर विच्छेद कुछ बढ़ नहीं जायगा ।

गौत०—(स्वगत) सच है ! प्रिये, यह विच्छेद मिट नहीं सकता ।

(प्रस्थान ।)

अह०—इतना रूप, यह भरी जवानी !—क्या यह सब वृथा हुआ ? अहल्या, तू इस स्त्रैण स्थविर मूढ़ गौतमको रोककर रख नहीं सकी !—धिक्कार है ! वह दृढ़ भावसे पैर बढ़ाते चले गये ? सूखी दृष्टिसे, मानो गहरी अनुकंपाके साथ, मेरी ओर ताककर चले गये ? हाय रमणी ! तू इस निष्फल दुर्बल रूपका घमंड मत कर ।　　　　(प्रस्थान ।)

सातवाँ दृश्य ।

स्थान—नन्दनभवन ।

समय—प्रातःकाल ।

[अनुचरों सहित इन्द्र बैठे हैं ।]

अप्सराएँ नाचती-गाती हैं ।

हम आकर यों ही यहाँ, चली जाती हैं ।
प्राकृतप्रकाशकी रंगत दिखलाती हैं ॥
हम सब प्रकाशकी तरह दमक जाती हैं ।
हम मधुर हँसीकी तरह चमक जाती हैं ॥
हम कुसुमगंधकी तरह गमक जाती हैं ।
हम मदविकारकी तरह झमक जाती हैं ॥
हम सब तरंगकी तरह उमड़ आती हैं ॥ हम आकर० ॥
हम अरुण गगनमें स्वर्गकिरणसे चढ़तीं ।

आनंदमार्गमें विचर विचरकर बढ़तीं ॥
हम संध्याको फिर उतर वहाँसे आतीं ।
बस रविकिरणोंके साथ अस्त हो जातीं ॥
हम स्निग्धकांतियुत शांतिगान गाती हैं ॥ हम आकर० ॥
हम शरदइंद्रधनुवर्ण दिखाकर छलतीं ।
हम ज्योत्स्नाकीसी अलस चालसे चलतीं ॥
हम हँसकर बसकर चित्त मदनमद ढालें ।
हम चपलाकीसी चमक निगाहें डालें ॥
हम आती हैं पर हाथ नहीं आती हैं ॥ हम आकर० ॥
हम श्यामलतामें शिशिरकणोंमें वनमें ।
हम इन्द्रधनुषमें नीलगगनमें घनमें ॥
हम गानतानमें कुसुमगंध अभिनवमें ।
हम चंद्रसूर्यकी किरणोंमें यों सबमें ॥
हम स्वप्न राज्यसे चली वहीं जाती हैं ॥ हम आकर० ॥

इन्द्र—ए छोकरे !

चन्द्र—देवराज !

इन्द्र—और एक प्याला अमृत दे !

(चन्द्रमा और एक पूर्ण पात्र देते हैं)

इन्द्र—पवन !

पवन—देवेन्द्र !

इन्द्र—अच्छा तुम तो स्वर्गलोक, मनुष्यलोक और पाताललोक—सब जगह जाते हो ?

पवन—जी हाँ ।

इन्द्र—तुमसे एक बात पूछूँ, जवाब दे सकोगे ?

पवन—जी, अगर दे सकूँगा तो दूँगा ।

इन्द्र–अच्छा, बताओ–स्वर्गका सा राज्य, इन्द्रका सा राजा, प्राचीकी सी स्त्री, सुधाके ऐसा मद, कहीं देखा है या नहीं ?

पवन–जी, नहीं।

इन्द्र–तुमने तो चटसे कह डाला 'जी, नहीं'। अच्छी तरह सुन भी लिया है ?

पवन–सुना नहीं तो क्या यों ही जवाब दे दिया ?

इन्द्र–अच्छा, किसका सा क्या कहा, बताओ ?

पवन–(स्वगत) मुश्किलमें डाल दिया। (प्रकट)–यह–यही–स्वर्ग-की सी नारी, सुधाका सा राजा, इन्द्रका सा राज्य और शचीका सा मद।

इन्द्र–दुर–तुम्हारी स्मरणशक्ति उतनी तेज नहीं जान पड़ती।

पवन–जी, नहीं तो।

इन्द्र–ना, तुम्हारी मात्रा जरा बढ़ गई है, अब न पीना (सुधाका पात्र हटा देता है)–वरुण !

वरुण–वज्रपाणि !

इन्द्र–इस प्रश्नका उत्तर दे सकते हो ?

वरुण–नहीं प्रभू !

इन्द्र–तुमने तो प्रश्न पूरा सुना भी नहीं, पहले ही कंधा रख दिया। अग्निदेव !

अग्नि–देवराज !

इन्द्र–एक प्रश्न करूँ ?

अग्नि–मुझसे अगर न कीजिए तो बड़ी कृपा होगी।

इन्द्र–सूर्य !

सूर्य—मैं अभी उठा नहीं देवराज !

इन्द्र—ठीक है । अभी तो रात है ।—चंद्र !

चंद्र—लीजिए । (सुधाका पात्र आगे रखता है)

इन्द्र—खूब होशियार है छोकरा !—देखो पवन ! मतलब नहीं समझते ? उर्वशी, मेनका, रंभा बिल्कुल पुरानी हो गई हैं ।

पवन—बिल्कुल ही महाराज !

इन्द्र—किसी ऐसी अपने मतलबकी कामिनीका नाम बता सकते हो, जिससे जीवनमें जरा विचित्रता आवे ?

पवन—बता सकता हूँ । लेकिन वे सब गिरिस्तोंके घरकी औरतें हैं ।

इन्द्र—गिरिस्तके घरकी होने दो—सुंदरी होनी चाहिए ।

पवन—अगर यह बात है, स्वर्ग छोड़कर मर्त्यलोकमें उतरना चाहते हैं, तो मैं एक ऐसी रमणी बता सकता हूँ, जिसकी तुलना त्रिभुवनमें नहीं है ।

इन्द्र—वह कौन है ?

पवन—मिथिलामें महर्षि गौतमकी स्त्री अहल्यादेवी ।

वरुण—बहुत कठिन जगह है । वहाँ दाँत नहीं गड़ सकता ।

इन्द्र—(संदिग्धभावसूचक सिर हिलाकर) हूँ !

पवन—लेकिन एक सुभीता है ।

इन्द्र—क्या ?

पवन—महर्षि प्रवासमें हैं ।

इन्द्र—हाँ ! तब तो क़िला फ़तेह है ।—अरे कोई मदनको तो बुला लाओ !—पवन, तुम्ही न चले जाओ !

पवन—जो आज्ञा । (प्रस्थान ।)

इन्द्र—चन्द्र, ढाल भाई !—यह प्रस्ताव बुरा नहीं है ।—क्यों जी अग्निदेव ? —ए, अप्सराओंको कोई जल्दी लाओ !

वरुण—लीजिए, मैं ही लाता हूँ । (प्रस्थान ।)

इन्द्र—अग्नि !

अग्नि—जी !

इन्द्र—तुम तो बहुत ही गंभीर बनकर बैठ गये ?

अग्नि—एँ—हाँ—सो मेरी आदत ही कुछ ऐसी है ।

इन्द्र—सच ?—लो वह मदन आ गया ।

[मदनका प्रवेश ।]

मदन—प्रणाम देवराज !

इन्द्र—आ गये—जीते रहो ।

मदन—जी हाँ । जीते रहना तो मैं बहुत चाहता हूँ; लेकिन देवराज ही उसका मौका नहीं देते ।

इन्द्र—क्यों ?

मदन—यही, दिनरात लोगोंके सर्वनाशके लिए फिरता रहता हूँ ।

इन्द्र—कैसा सर्वनाश ?

मदन—यही, अमुककी स्त्रीको निकाल लाओ, अमुकका सतीत्व नष्ट करो, अमुकका तिबारा ब्याह कराओ ।

इन्द्र—ये सब तो बहुत सहज शिकार हैं । विधवा बालिकाका सर्वनाश करना, द्विचारिणीको वेश्या बनाना, असहाया रमणीसे व्यभिचार कराना—यह सब तो मैं भी कर सकता हूँ ।

मदन–फिर और क्या करनेको कहते हैं ?

इन्द्र–यथार्थ सतीका सर्वनाश कर सकते हो ?

मदन–ना, इस काममें तो आप ही फ़र्द हैं ।

इन्द्र–दिल्लगी रहने दो । यही काम करनेके लिए मैंने तुमको बुलाया है ।

मदन–सो मैंने पहले ही ताड़ लिया था । अच्छा अब बताइए, वह भाग्यवती है कौन ?

इन्द्र–(चुपकेसे कानमें) महर्षि गौतमकी स्त्री अहल्या ।

मदन–बड़ी कठिन जगह है ।

इन्द्र–नहीं तो मैंने क्या तुम्हें फलाहारके न्यौतेमें बुलाया है ?–सुनो–एक बड़ा भारी सुभीता है ।

मदन–क्या सुभीता ?

इन्द्र–महर्षि इस समय प्रवासमें हैं ।

मदन–जान पड़ता है, तब तो शायद भस्म हुए विना ही काम पूरा कर सकूँगा ! लेकिन—लेकिन, एक बात याद रखिएगा ।

इन्द्र–क्या ?

मदन–सुनिए—(गाता है)

जो जन पड़े प्रेमके फंदे ।
वह अवश्य ही रोता यकदिन, खूब समझ ले बंदे ॥
पहले दो दिन हँसीखुशीमें कटे जिंदगी खासी ।
फिर गंभीरभावसे खाँसे, अंत गलेमें फाँसी ॥
पहले तो आराम मिलेगा, अंत हृदयमें ज्वाला ।
खूब रगड़नेसे हो जाता कड़वा नींबू आला ॥

पहले नाचें मूँड़ चढ़ाकर पीछे खीझ झगड़ते ।
" छोड़ दे मैया जान बचे " यों कहकर नाक रगड़ते ॥

इन्द्र—सो पीछे जो होना होगा सो होगा । अभीका काम तो अभी करो ।

मदन—तथास्तु ।

इन्द्र—चंद्र !

चन्द्र—सुरराज !

इन्द्र—और एक प्याला देना !

[अप्सराओंका प्रवेश ।]

इन्द्र—आगई अप्सराओ ? अच्छा, कोई अच्छीसी चीज़ सुनाओ । देखो, ऐसा गीत गाओ, जिससे जी खुश हो जाय—उमंग बढ़े। कोई सोहनी गाओ—या तेवट नाचो ।

(अप्सराएँ पहले नाचतीं फिर गातीं हैं ।)

गज़ल—सोहनी ।

ढालो, अमृत ढालो किशोरी चंद्रवदनी सुंदरी ।
है जो तृषा आकुल अधीर उसे बुझाओ, रसभरी !
हर एक नसमें गर्म खून उमंगसे लहरा उठे ।
ढालो अभी मदिरा, बना दो मस्त मुझको, सुंदरी !
चौंरी डुलाओ त्यों सुगंधित शुभ वसंती वायुसे—
बस शान्तिसुख भर दो हृदयमें, सुघर सुरपुरकी परी !
बाजें मृदंग सितार मुरली, ललित सारंगी बजे ।
गाओ मधुर स्वरसे, दिशाएँ गूँज उठें, किन्नरी !
नाचो निराले हाव-भाव-दिखावसे, अनुरागसे—
मन्मथ मथे मन और यों ही बाण मारे सरसरी ॥

दूसरा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान–अहल्याकी कुटी।

समय–सायंकाल।

[अहल्या अकेली बैठी है।]

अह०–कैसी घोर वर्षाऋतु है ! भूरे भूरे गहरे बादलोंने आकाशको ढक रक्खा है। रह रहकर झीला पड़ जाता है। पानी गिरनेकी अविराम झंकार पृथ्वीसे लेकर आकाशतक व्याप्त हो रही है। आओ बहन बरसात ! शीकर-शीतल-वायुपर बैठकर आओ सुकुमारी ! घामसे सूखी और तपीहुई धरतीको स्निग्ध करो—हरीभरी बनाओ सुंदरी ! (गाती है)—

सुंदर सब भाँति सुखद वर्षाऋतु आई।
घेरत घन घोर गगन, अंधकार दसहु दिसन,
सब प्रसन्न लोग मगन, शोभा सरसाई ॥
मारि रह्यो काम तीर, आकुल हिय अति अधीर,
उत्कट उत्कंठा नहिं रोकि सकौं माई ॥
चमकत चपला अकास, चौंकत चित इत उदास,
गरजें घन घने शब्द हृदय काँपि जाई ॥
झरझर जल धार झरत, आँसू इत दृगन गिरत,
धीरज मन नाहिं धरत, कछू ना सुहाई ॥
छाय रह्यो अंधकार, चार ओर उत अपार,
इत विषाद बेशुमार, हृदय रह्यो छाई ॥

सजल पवन माहिं जाय, वायु मिलत धाय धाय,
शून्य दृष्टि नहिं हटाय, ताकौं झुरझाई ॥
यातना अनेक सहित, इत अनेक विथा निहित,
निशिदिन करि धैर्यरहित जागैं हिय माई ॥
मर्मस्थल भेदत सी, दीर्घश्वास छेदत सी,
उठत निराशा रही हृदय महँ समाई ॥
ज्वानीको वेग चपल, निष्फल सौन्दर्य सकल,
धिक धिक यह जन्म विफल, मेरो दुखदाई ॥

[रतिका प्रवेश ।]

अह०—तुम कौन हो ?

रति—अतिथि ।

अह०—खा चुकी हो या भूखी हो ?

रति—भूखी नहीं, प्यासी हूँ ।

अह०—प्यासी ? वर्षाके लगातार होनेसे मैदान-बाट जंगल आदि सब पानीमें बूड़ गये हैं—और तुम—तुम प्यासी हो ?—यह क्या रूढ़ परिहास है ?

रति—परिहास नहीं । सच बात है । सरोवरमें शीतल जल भरा है, लेकिन उससे चातककी प्यास नहीं बुझती ।

अह०—दिल्लगी छोड़कर अब पहेली बुझाने लगीं ?

रति—तुमने कभी आईनेमें अपनी इस अनूप रूप-राशिका प्रतिबिंब देखा है ?

अह०—देखा है ।—इस समय तुम क्या चाहती हो ?

रति—तपस्विनी ! मैं केवल टक लगाकर तुम्हारे मुँहकी मोहिनी देखा चाहती हूँ ।

अह०—तुम तो स्त्री हो—

रति—इससे क्या ? विश्वकी संपत्ति रूप है—यह विश्वभरके विस्मयकी वस्तु है ।

अह०—तुम्हारा क्या नाम है ?

रति—रति ।

अह०—निवासस्थान ?

रति—स्वर्ग है । मैं किसी प्रयोजनसे, इधरसे, मिथिलाको जा रही थी—एकाएक वर्षाकी झड़ी लग गई । लाचार होकर मुझे इस आश्रमके बाहर आश्रय लेना पड़ा । सहसा तुम्हारी यह मोहिनी मूर्त्ति देख पड़ी, मैं विस्मयके मारे सन्नाटेमें आकर चित्रलिखितसी खड़ी रह गई ।—सखी, तुम्हारा नाम क्या है ?

अह०—मैं तपस्विनी अहल्या हूँ ।

रति—मैं बड़ी भाग्यशालिनी हूँ । स्वर्गमें अहल्याका नाम सुन चुकी हूँ ।—फिर जोरसे पानी आगया । कृपा करके क्या आज इस आश्रममें जगह दोगी ?

अह०—मैं कृतार्थ हो जाऊँगी । मेरे पति घरमें नहीं हैं—परदेस गये हैं । तुम अभ्यागत हो, रहना चाहती हो—यह मेरा सौभाग्य है । आश्रमके भीतर चलो ।

रति—चलो प्यारी सखी !

दूसरा दृश्य।

स्थान—गौतमके तपोवनका मार्ग।

समय—संध्याकाल।

[मदन और वसन्त।]

(मदन गाता है।)

पहनूँ गले फूलकी माला, फूल-पराग शरीर मलूँ।
फूल-साजसे केश सजाऊँ, फूल-वेशको पहन चलूँ॥
फूल-धनुषको लिये हाथमें उसको तान करूँ मैं वार।
फूल-बाण कसकस कर मारूँ हृदय चीर पहुँचें उस पार॥
फूल-महक छा जाती, आँखें अलस अवश हो जातीं बंद।
फूल बंधु हैं, फूलोंहीसे खेला करता हूँ सानंद॥
मधुर फूल-मधु पिया करूँ, मैं फूल-सेज पर सोता हूँ।
फूलोंहीकी सुंदर शोभा देख सुखी मैं होता हूँ॥

मदन—क्या सोच रहे हो वसंत?

वसंत—सोचता यह हूँ कि प्रभु, आप इतना झूठ भी बोल सकते हैं?

मदन—क्या झूठ बोला हूँ सखा!

वसंत—कमसे कम भीतरी बातें सब दबा गये।

मदन—कैसे?

वसंत—यही, मुँहसे तो खूब कह दिया कि "फूलके वेषसे शरीर ढकता हूँ;" लेकिन उसके नीचे महाशयकी खासा मखमलकी पोशाक देख रहा हूँ।

मदन—केवल फूलसे कहीं शरीर ढका जा सकता है, या जाड़ा जा सकता है?

वसंत—मेरा भी तो मतलब वही है । अगर फूलोंसे मतलब चल जाता तो फिर लोग रुईकी खेती छोड़कर फूलोंकी ही खेती करते ।

मदन—अच्छा, उसके बाद और क्या झूठ बोला हूँ ?

वसंत—उसके बाद "फूलका धनुष" झूठ है । फूलका धनुष विश्वकर्माके बापसे भी नहीं बन सकता । उसके लिए एक कड़ी चीज ज़रूर ही चाहिए—ऊपरसे फूल भले ही लगा लिये जायँ ।

मदन—अच्छा और क्या झूठ है ?

वसंत—और "फूलोंसे खेलना"। फूलोंसे खेलना अवश्य ऐसा कुछ कठिन काम नहीं है, लेकिन महाशयको मैंने सदा 'गुल्ली-डंडा' खेलते ही देखा है ।

मदन—वह तो लड़कपनकी बात कह रहे हो !

वसन्त—जाने दीजिए । लेकिन यह तो मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि केवल फूलोंका मधु पीकर ही यह वास्तविक वर्तुलाकार शरीर इस तरह पुष्ट नहीं हो रहा है ।

मदन—अजी—समझते नहीं—

वसंत—और फूलोंकी ओर ताकते रहनेके सिवा आपको हम लोगोंकी तरह और भी दो-चार काम करने पड़ते हैं ।

मदन—अजी ये सब तो कविताकी बाते हैं । जान पड़ता है, तुम कविताकी कला कुछ भी नहीं जानते ।—क्यों ?

वसंत—जी नहीं, मैंने काव्य-कला नहीं पढ़ी ! लेकिन कलाकंदकी मिठाई खाई है; और क़सम खाकर कह सकता हूँ कि कलाकंदकी बढ़िया मिठाईके आगे काव्य-कला या चित्र-कला कोई चीज नहीं है ।

मदन—इस गीतकी सब बातें कविता हैं—लो वह शिकार आ रहा है। तुम्हारे साथी मलय-पवन और कोकिला आदि सब तैयार हैं?

वसंत—सब तैयार हैं—देखिएगा?

(निकट ही कोकिला बोलती है।)

मदन—वाह वाह, इस कोकिलाके शब्दको सुनकर भी अगर अहल्या देवी हमारे फंदेमें नहीं फँसे तो समझना होगा कि उनका शरीर रक्त-मांसका नहीं—ईंट-सुर्खीका बना हुआ है। बेशक, कोयल भी विचित्र चिड़िया है। चलो, अब अलग हट चलें। (दोनोंका प्रस्थान)

जाते जाते मदन गाता है—

एक बहुत काली चिड़िया है, उसके पखने दो काले ।
कवि उसको कोमल कहते हैं, उसने लाखों घर घाले ॥
फागुन चैत मासमें बोले, है उसका अभ्यास बुरा ।
संयोगीको सुधासदृश स्वर, वियोगिनीको मनों छुरा ॥
कुहूकुहू रव सुनकर जैसे प्राण तड़पने लगते हैं ।
खाखाकर पछाड़ गिरती हैं वियोगिनी, दुख जगते हैं ॥
प्राणकांतके बिना सुनें जो उस चिड़ियाका स्वर मीठा ।
तो फिर जीवन उनको लगता सूनासा बिल्कुल सीठा ॥
वह चिड़िया है सत्यानासी, नव वसंतमें आ करके—
गड़बड़ करती; गजब ढहाती पंचम स्वरमें गा करके ॥
बड़े भाग्य हैं जो वह चिड़िया बारोंमास नहीं रहती ।
नहीं तो जीना भारी होता; किसकी छाती यह सहती !

(प्रस्थान।)

[अहल्या और रतिका प्रवेश।]

रति—हाय सखी, इस वसंत ऋतुमें यह रूप, ऐसी भरी जवानी इस

तरह !—सखी, जीवनमें केवल एक बार जवानी आती है, और जवानी बहुत दिन नहीं रहती—चार दिनकी चाँदनी होती है !

अहल्या—समझती हूँ, सब समझती हूँ, लेकिन क्या करूँ ? मैं बहुत ही अभागिन हूँ !

रति—जौहरीके सिवा बंदर भी कहीं रत्नकी कदर जान सकता है ? बनमें रत्न मत छिटकाओ। यह रूप और जवानी सदा नहीं रहेगी—इस रूप और जवानीको सार्थक करो। अच्छा तो अब जाती हूँ सखी !—मैं बड़ी भाग्यवती हूँ जो एकाएक तुमसे भेंट होगई। अप्सराओंमें ही ऐसा अपूर्व रूप होना संभव है। राहमें इस रूपराशिको देखकर ही मैं धन्य हो गई। (प्रस्थान।)

अहल्या—आहा ! कैसा सुंदर समय है ! कैसा मनोहर दृश्य है ! (बैठ जाती है) श्यामल निकुंज पुंजपुंज मंजु मंजरियोंसे अलंकृत हो रहे हैं; भौंरे गूँज रहे हैं। सुंदर पल्लवपूर्ण वन-वीथियाँ सन्ध्याकी किरणोंसे रंजित हो रही हैं। दूरपर—वनकी कठोर भूमिमें, घने वृक्षोंकी छायामें, आधा घूँघटसा निकाले नदी तेज़ीके साथ वही जा रही है। सारा वन निस्तब्ध है।—केवल दूरपर आमके बागमें एक कोकिला पुष्पित वन-भूमिको कँपाती हुई ललित उच्छ्वासके साथ कुहूध्वनि कर रही है। मंदगतिसे, धीमे हिलकोरोंके साथ वसन्तकी हवा चल रही है। वह एक मृगका बच्चा, गर्दन टेढ़ी करके, निस्पंद विस्मयके साथ, निस्तब्ध वनकी ओर ताक रहा है। सबके ऊपर निस्पन्द, निर्मल, शीघ्र ही मेघ-मुक्त हुआ गहरे नीले रंगका आकाश, पृथ्वीके लज्जासे लाल हुए सुखस्मित अधरबिंबको चूमनेके लिए जैसे झुक रहा है। कौन कहेगा

कि यह वर्षा ऋतु है ! कौन कह सकता है कि कल इस नील आकाशको वर्षाकी घन-घटा घेरे हुए थी ? वसन्त और वर्षाके मधुर मेलने जैसे एक अपूर्व सौन्दर्यके राज्यकी रचना कर दी है—आहा ! कैसा मधुर दृश्य है ! बहुत दिनोंसे मैंने ऐसा मनको मुग्ध करनेवाला सौन्दर्यका चित्र नहीं देखा था । जान पड़ता है, बहुत दिनोंसे इतनी ठंडी हवा नहीं चली—कोकिलाने इतने अधीर आग्रहके साथ कुहूध्वनि नहीं की ।

(गाती है)—

आजु जिय चाहत कहा दई !
आकुल हिये वासना कैसी रहि रहि उठै नई ?
लहै न बोध अधीर हृदय क्यों ? सुधिबुधि कितै गई ?
क्यों मुँहज़ोर ढीठ हयकी सी गति हिय आजु ठई ?
कौन अपरिचित आकर्षणसों कौन ओर चलई ?

अहल्या—वह चंद्रमा आकाशमें ऊपर उठ रहा है ! वाह्वाह—कैसी शोभा है ! वनके भीतर चाँदनी भर गई ! एक ओर शान्त गौरवके साथ सूर्य अस्त हो गये हैं; दूसरी ओर चन्द्रमा स्निग्ध हास्यके साथ उदय हो आया है । सूर्य और चंद्र दोनोंने मानों दिगन्तविस्तृत उज्ज्वल आकाश-राज्यको बाँट लिया है। वह तारागणपरिपूर्ण सन्नाटेसे भरी रात्रि—श्रान्तिके बाद शान्तिकी तरह—शुष्क कार्यके बाद शिथिल स्वप्नकी तरह आ रही है ।—वह—वह कौन गारहा है !

[एक सजीहुई नावपर बैठीहुई अप्सराओंका गाते गाते प्रवेश और प्रस्थान ।]

समय सब योंही बीता जाय ।
आवेगा सँग कौन हमारे आवे सो आजाय ॥ समय० ॥
छोटा बजरा सजा हमारा हिलता डुलता जाय ।

जुही चमेलीके हारोंका हिलना रहा लुभाय ॥
फहराती रेशमी पताका, धीमी हवा सुहाय ।
नदिया भीतर बालम बजरा हिलता डुलता जाय ॥
प्रेमी नये मुसाफिर सारे, नये प्रेमको पाय ।
मगन उसीमें लगन लगाये, हिये न प्रेम समाय ॥
मुखमें हँसी बसी आँखोंमें रही खुमारी छाय ।
बढ़ते जाते प्रेमपंथमें दुनिया दूर बहाय ॥
पश्चिमका आकाश देखिए, संध्याकाल सुहाय ।
यह लाली अनुराग सरीखी, जीमें रही समाय ॥
मधुर स्वप्नसा उधर चन्द्र वह देख पड़े छवि छाय ।
उमँगभरी नदिया लहराती, कलधुनि रही सुनाय ॥
शीतल मंद सुगंध पवनमें वंशीधुनि सरसाय ।
छुटे फुहारा हर्ष-हँसीका, लीजे गले लगाय ॥

अहल्या—यह क्या स्वर्गीय संगीत है ? पुलकसे आवेशके मारे शरीरमें रोमांच हो रहा है । हृदयमें कैसी वासना जग रही है ? —अब प्रवाहको रोक रखना मेरी शक्तिके बाहर हो रहा है। —हाय, समझ गई, मेरी जवानी निष्फल है, मेरा यह नारीजन्म वृथा है । समय बीत गया—बस तो फिर अपने सूने आश्रमको लौट जाऊँ ! (जाना चाहती है—फिर नेपथ्यकी ओर देखकर) यह गोरे रंगका नौजवान कोन है ? सिरपर जटा रखाये, शिथिल गतिसे यह कौन पुरुष इस वनवीथीमें जा रहा है ? यह कौन है? मैंने तो इसे कभी नहीं देखा । शरीर सुगठित सुंदर और लंबा है; छाता चौड़ा है; चाल गजराजकी सी मस्त है; मृगाजिन शरीरकी शोभा बढ़ा रहा है । लेकिन सबसे बढ़कर सुंदर इसका मुखचंद्र है । शैवालवेष्टित कोमल कमलनालके ऊपर कमलकुसुमके समान, देहके ऊपर मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा है । यह कौन है ? पुकारकर पूछूँ ।—पथिक ! तुम कौन हो?

[तपस्वीके वेषमें इन्द्रका प्रवेश।]

इन्द्र—सुंदरी तपस्विनी ! तुम कौन हो ? तुमने मुझे क्यों पुकारा है ?

अहल्या—तुम कहाँ जाओगे ?

इन्द्र—मिथिलाको जाऊँगा। मिथिला नगरी यहाँसे कितनी दूर है ? देवि ! दया करके मुझे मिथिलाकी राह बता दो।

अह०—पथिक, वह दुर्गमस्थान यहाँसे बहुत दूर है। सन्ध्यासमय आगया है। हे तापस ! तुम रातको मेरे आश्रममें सुखसे रहो। कल सबेरे उठकर वहाँ चले जाना।

इन्द्र—तुम कौन हो ?

अह०—तपस्विनी हूँ।

इन्द्र—तुम्हारा नाम क्या है ?

अह०—अहल्या है।—नहीं सखा, यह मैंने झूठ कहा। मैं केवल नारी हूँ; मेरा कोई नाम नहीं है।—नहीं मित्र, मेरा क्या नाम है—सो जैसे मैं भूली जा रही हूँ। नाम पूछते हो ? नहीं नहीं, मैं केवल संन्यासिनी हूँ, और कुछ मेरा नाम नहीं है।

इन्द्र—सच सच खुलासा करके कहो। पहेली बुझाना मेरी समझमें नहीं आता। तुम कौन हो ?

अह०—प्रिय, सच कहूँ ? हाँ सच कहूँगी—मेरे आश्रममें चलो।

इन्द्र—नहीं, नहीं, मैं आश्रममें नही जाऊँगा।

अह०—नहीं, तुम जरूर जाओगे ! तुम्हारे मनका भाव मुखपर स्पष्ट झलक रहा है। कपट छोड़कर आश्रममें चलो। (अस्पष्टस्वरमें) सच कहती हूँ—मैं तुम्हारी दासी हूँ, तुम मेरे प्राणेश्वर हो।

(दोनोंका प्रस्थान।)

[मदन और रतिका फिर प्रवेश और गाना–]

कुल योंहीं डुबावें अनेक, हम इस संसारमें ।
अनिष्ट जो कि हुआ करते यार जीवनमें ।
सभीकी जड़ हैं हमी जान लो इसे मनमें ॥
रहे न लोकहँसाईका ख्याल इक छनमें ।
रहे न शांति जरासी भी कामबंधनमें ॥
ऋषियोंकी भी टिकती न टेक । हम इस० ॥

(मदन–) हृदयमें ताकके फूलोंके शर चलाऊँ मैं ।
(रति–) हृदय हृदयसे अधरसे अधर मिलाऊँ मैं ॥
(काम–) कमलदलोंका सुकोमल पलँग बिछाऊँ मैं ।
(रति–) सुगंध फूलोंको उस पर बिखेर आऊँ मैं ॥
(दोनों–) श्रामबूँदोंसे हो अभिषेक । हम इस० ॥
(काम–) सुवास प्रेमकी साँसोंमें तो बढ़ाऊँ मैं ।
विनोदप्रेमवचनगानसे रिझाऊँ मैं ॥
(रति–) अधरमें स्वाद सुधाका मधुर चखाऊँ मैं ।
कटाक्ष बाणसे पैने बना दिखाऊँ मैं ।
(दोनों–) कला चलती किसीकी न एक । हम इस० ॥
(काम–) मैं स्वर्गलोककी रचना करूँ घड़ी भरमें ।
(रति–) सुधाकी वृष्टि मिलनमें कराऊँ घर घरमें ॥
(काम–) उड़ादूँ वस्त्रका आँचल मैं ऐसे अवसरमें ।
(रति–) उड़ाके लटको फँसा दूँ बुलाक बेसरमें ॥
(दोनों–) बचे हमसे न बद और नेक । हम इस० ॥
(काम–) प्रताप मेरा अमर जानें, क्षुद्र नर है क्या ।
(रति–) करूँ मैं पूर्ण उसे सोलहो कलासे आ ॥
(काम–) जगत्में प्रेमकी जय-घोषणा करूँ मैं सदा ।
(रति–) विपत्ति–वज्र गिराऊँ मैं प्रेमपर ला ला ॥
(दोनों–) हरा हमने ही विधिका विवेक । हम इस० ॥

तीसरा दृश्य ।

स्थान–चिरंजीवके आश्रमका बाहरी हिस्सा ।

समय–तीसरा पहर ।

[तेज़ीसे माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी–कैसा आश्चर्य है ! कैसा अन्याय है ! कैसी लोमहर्षण घटना है ! क्या करूँ ? किसकी सलाह लूँ ? एक बार दूसरे तपस्वियोंके आश्रममें जाऊँ क्या ? नहीं । और तपस्वियोंके आगे अभी यह निन्दनीय घटना प्रकट करनेकी जरूरत नहीं है । देखूं, अगर मैं ही इसका कुछ उपाय कर सकूँ । पहले स्वामीके साथ सलाह करना ही ठीक है । वह स्वामी जा रहे हैं—बुलाऊँ । स्वामी ! जरा इधर आइए ।

[चिरंजीवका प्रवेश ।]

चिरं०–क्या है ? क्या तूने मुझे बुलाया है ?

माधुरी–हाँ । एक बात कहनी है ।

चिरं०–क्या वह बात बहुत जरूरी है ?

माधुरी–हाँ, बहुत जरूरी है ।

चिरं०–तो फिर अभी कह डाल । मैं भी एक बहुत जरूरी कामसे जा रहा हूँ ।

माधुरी–गुरुपत्नी कहाँ हैं ?

चिरं०–आश्रममें ।

माधुरी–क्या कर रही हैं ?

चिरं०–करेंगी और क्या ? आँखें मल रही हैं । वही पुराना मसला है ।

माधुरी—कौन पुराना मसला ?

चिरं०—वही बुड्ढे-बुड्ढीका मसला । तू शायद नहीं जानती ? अच्छा ले सुन। (गाता है)—

एक जगह पर बुढ़िया बुड्ढा, दोनों सुखसे रहते थे।
हेलमेल था दोनोंहीको दोनों जीसे चहते थे॥
बुढ़िया कट्टर वैष्णव थी, पर बूढ़ा शाक्त बड़ा भारी।
जब झगड़ा होता तब होती लठ लेकर मारामारी॥
धमाचौकड़ी देख महल्लेवाले और पड़ोसी लोग।
दौड़े आते पुलिस बुलाते, ऐसा होता था संयोग॥
"दुत्तेरे" की कहकर बुड्ढा हुआ अचानक अंतर्द्धान।
बुढ़िया तब बुड्ढेकी खातिर देने लगी बिलख कर जान॥
साल भरेके बाद कहींसे फिर आया बुड्ढा घरको।
बुढ़िया तब तो राँध रसोईं रखती खुशी सुघर वरको॥
झगड़ा मिटा प्रेम वैसा ही देख पड़ा उनके दर्म्यान।
बुढ़िया मिस्सी मलती, बुड्ढा साबन मलकर करता स्नान॥

चिरं०—अच्छा माधुरी! मैं एक बड़े भारी धोखेमें पड़ गया हूँ।

माधुरी—क्या धोखा प्राणनाथ ?

चिरं०—धोखा यही है कि क्या तू सचमुच मुझे प्यार करती है ?

माधुरी—सचमुच प्यार करती हूँ।

चिरं०—हूँ, देखनेसे तो यही जान पड़ता है।

माधुरी—तो फिर धोखा क्या है ?

चिरं०—यही तो धोखा है।—अच्छा तू खूब प्यार करती है ?

माधुरी—खूब प्यार करती हूँ।

चिरं०—लेकिन मैं तुझे बिल्कुल प्यार नहीं करता।

माधुरी—एक दिन प्यार करोगे ।

चिरं०—ऊँ हूँ:—जान तो नहीं पड़ता । (संदेहसूचक सिर हिलाता है) मैं तुझे किसी तरह प्यार नहीं कर सकता ।

माधुरी—क्यों ? मैं जातिकी वेश्या हूँ—इस लिए ?

चिरं०—नहीं, तू जातिकी स्त्री है—इसलिए । तुझे किसी तरह प्यार नहीं कर सकता ।—तू असार, अकिंचित्कर, एक साधारण स्त्री है । मुझ सा एक भारी जानवर तुझ सी एक क्षुद्र स्त्रीको प्यार नहीं कर सकता ।

माधुरी—तुम्हारी जैसी इच्छा । तुम मुझे प्यार करो या न करो, मगर मैं तुम्हें सदा प्यार करती रहूँगी ।

चिरं०—यही तो स्त्रीजातिमें दोष होता है । गले पड़ जाती हैं तो पीछा ही नहीं छोड़तीं ।

माधुरी—अच्छा इस बातको छोड़ो । हालमें तुमने गुरुपत्नीके आश्रममें कुछ देखा है ?

चिरं०—देखा है ।

माधुरी—क्या देखा है ?

चिरं०—साँप, बिच्छू, तोते, बुलबुल, गिरगिट, सियार—

माधुरी—नहीं नहीं—कुछ नई बात ?

चिरं०—मृगीके एक बच्चा हुआ है !

माधुरी—नहीं जी, यह कुछ नहीं । किसी नये आदमीको देखा है ।

चिरं०—आदमीको ?

माधुरी—हाँ ।

चिरं०—आदमी ? कहाँ—आदमी तो नहीं देखा ।

माधुरी—एक आदमी आया है ।

चिरं०—मर्द या औरत ?

माधुरी—मर्द । एक सुंदर गोरा जवान नित्य आधी रातको आता है, और सवेरे चला जाता है ।

चिरं०—हाँ ? सच ? यह तमाशा तो बुरा नहीं है ।—कहाँसे आता है और कहाँ चला जाता है ?

माधुरी—दूरपर नदीके ऊपर तुमने एक सजीहुई नाव क्या नहीं देखी?

चिरं०—शायद देखी है ।

माधुरी—वहींसे आता है और वहीं चला जाता है ।

चिरं०—समझ गया । बाबा, चिरंजीवशर्मा इतना मूर्ख नहीं है ।—जा-यगा कहाँ ? स्त्रीजातिका चरित्र ही ऐसा होता है, सो चाहे वह रेशमी सारी पहने, और चाहे वृक्षके वल्कल पहने—स्त्रीचरित्र कहाँ जायगा ? कहाँ जायगा ?

माधुरी—इस समय तुम्हें एक काम करना होगा ।

चिरं०—क्या करना होगा—बता तो सही ! मेरे शरीरमें जितनी ताक़त है उतनी ही बुद्धि अगर मस्तकमें होती, तो जान पड़ता है, शायद मैं एक बुद्धिमान् आदमी हो सकता ।

माधुरी—करना यही होगा कि उस आदमीका पता लगाओ । वह कौन है ? कहाँ रहता है ? और उसका अभिप्राय क्या है ? यह जानना चाहिए ।

चिरं०—वह कौन है और कहाँ रहता है, सो बेशक मैं नहीं जानता ।

लेकिन उसका अभिप्राय क्या है, सो खूब मेरी समझमें आगया। ऐसी हालतमें सभी मर्दोंका एक ही अभिप्राय हुआ करता है।

माधुरी—वह कल तड़के जब आश्रमसे निकलकर चले, तब तुम उसके पीछे पीछे जाना। जाकर—

चिरं०—यह मुझसे नहीं होगा। मैं पीछे पीछे जाकर उसे नहीं पकड़ सकूँगा। पकड़ूँगा तो सामनेसे लड़कर पकड़ूँगा। (उग्रभाव धारण करता है)

माधुरी—नहीं प्रभू। महर्षि गौतमके पवित्र आश्रममें कोई बदनामीका काम करनेकी जरूरत नहीं है।

चिरं हूँ हूँ! (हुंकार)

माधुरी—दोहाई है तुम्हारी स्वामी। यहाँ नहीं। युद्ध करना हो तो तपोवनके बाहर जाकर करना। आज पिछली रातको जरा जागते रहना।

चिरं०—मुझे तो आज रातभर नींद नहीं आवेगी।—अच्छी बात है! बहुत अच्छी खबर है! इस तरह जीवनमें जरा विचित्रता आती है।

माधुरी—(नेपथ्यकी ओर देखकर) वह शतानंद आ रहा है। रोता क्यों है?

[रोते हुए शतानंदका प्रवेश।]

शता०—मौसी!

माधुरी—क्या है बेटा?

शता०—माने मुझे मारा है।

माधुरी—क्यों?

शता०—मुझे नहीं मालूम। मारा है, और कहा है कि आज रातको वे मुझे अपने पास सोने न देंगी। (रोता है)

चिरं०—तो छोकरे, मा जब तुझे मारती है, तब तू उसके पास सोने क्यों जाता है?

माधुरी—तुम नहीं समझते; यह हृदयके स्नेहका खिंचाव है। चल बेटा, तू मेरे साथ खेल। (शतानंदको लेकर माधुरीका प्रस्थान।)

चिरं०—(आप ही आप) हूँ हूँ, मैं क्या यों ही कहता हूँ कि स्वभाव नहीं छूटता! "नीम न मीठी होय चाहे सींचो गुड़-घीसे।" जायगा कहाँ? स्त्रीका चरित्र ठहरा—कहाँ जायगा?

[एक तपस्वीका प्रवेश।]

चिरं०—हूँ हूँ हूँ हूँ! (हुंकार)

तपस्वी—क्यों महाशय! एकाएक इतना उग्र रूप क्यों कर लिया?

चिरं०—मेरे हृदयमें क्रोधका उदय हो आया है!

तप०—क्यों?

चिरं०—तुझे इसकी खोज करनेकी क्या ज़रूरत पड़ी है रे? (मारने दौड़ता है) निकल जा मेरे आश्रमसे!

तप०—जाता हूँ बाबा। मैं तो एक अच्छी ख़बर देने आया था—

चिरं०—अच्छी ख़बर? (आग्रहके साथ) क्या? क्या?

तप०—महर्षि गौतम लौटे आरहे हैं।

चिरं०—कब आवेंगे?

तप०—यही, एक सप्ताहके भीतर ही!

चिरं०—क्यों? लौटे क्यों आ रहे हैं?

तप०—वहाँ तपस्या नहीं हो सकी । राक्षस लोग घोर उपद्रव कर रहे हैं । विश्वामित्र ऋषि महाराज दशरथके पास राक्षसोंके विनाशकी प्रार्थना करने गये हैं । और गौतमजी लौटे आ रहे हैं ।

चिरं०—महर्षिमें कुछ भी मानसिक बल नहीं है । गौतम ऋषि अत्यन्त अपदार्थ हैं । स्त्रीको छोड़कर उनसे वहाँ नहीं रहा गया—और क्या ? समझ गया—अत्यंत अपदार्थ हैं ।　　　(दोनोंका प्रस्थान ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—अहल्याकी कुटीका भीतरी भाग ।

समय—पिछली रात

[इन्द्र और अहल्या ।]

अहल्या—तुम इन्द्र हो ? पहले यह जानती तो तुमको क्यों अपने हृदयका ईश्वर बनाती मायावी ?

इन्द्र—मुझमें क्या दोष है ?

अह०—तुममें सैकड़ों दोष हैं । मैंने सुना है—तुम धूर्त, व्यभिचारी और लंपट हो ।

इन्द्र—मेरी इस व्यर्थकी बदनामी पर तुम विश्वास न करना ।

अह०—सच कहो, तुम अहल्याको प्यार करते हो ?

इन्द्र—(दोनों हाथ पकड़कर) अनिन्द्यसुन्दरी ! मेरी हृदयेश्वरी ! नन्दन-काननमें किशोर मंदार-पुष्प वसंतवायुसे संचालित होकर इतनी सुगंध नहीं देता, जितनी सुगंध तुम्हारी अस्फुट प्रणयवाणीसे मिली हुई

साँसमें मिलती है। तुम्हारे इन लाल लाल होठोंमें जितना अमृत है उतना अमृत मेरे स्वर्गके भांडारमें भी नहीं है। (चुंबन।) जलभरे बादलोंमें खेलती हुई बिजली भी इतनी स्निग्ध-तीव्र नहीं है, जितनी स्निग्धता तुम्हारे आलिंगनमें है प्रियतमे ! (आलिंगन।)

अह०—सच कहते हो ?

इन्द्र—सच कहता हूँ।

अह०—हाय अगर तुम्हारी इस बातपर मैं विश्वास कर सकती !

इन्द्र—क्यों नहीं विश्वास कर सकतीं ?

अह०—तुम्हारी सभामें वेश्याएँ नाचती हैं ?

इन्द्र—वे नाचनेवाली हैं, मेरी प्रणयिनी नहीं हैं।

अह०—शची देवी तुम्हारी रानी हैं ?

इन्द्र—इन्द्राणी केवल रानी हैं, प्रणयिनी नहीं हैं।

अह०—(सहसा) ना ना लौट जाओ ! अब भी तुम लौट सकते हो, अब भी मैं लौट सकती हूँ ! जो होना था, हो गया। कोई नहीं जानेगा। लौट जाओ।

इन्द्र—मैं जाऊँगा प्रियतमे, लेकिन मेरे साथ तुमको भी चलना होगा। चलो, अभी चलो। किनारे पर नाव सजी खड़ी है। चलो।

अह०—नहीं हृदयेश्वर ! क्यों मुझे गहरी दलदलमें फँसा रहे हो ? मैं गौतम ऋषिकी स्त्री हूँ।

इन्द्र—क्यों अपने मनको यह मिथ्या प्रबोध देती हो ! बहुत दूर आ गई हो ! अब लौटना मत चाहो। अब अहल्या और इन्द्र मरणपर्यन्त एक न टूटनेवाली शृंखलामें बँध गये हैं। चलो, मैं तुमको संगमर्मरके

महलमें—पुष्पसुवासित सोनेके पलँगमें—रक्खूँगा । हीरेके गहने पहननेको दूँगा । सैकड़ों दास-दासियाँ तुम्हारी सेवा करेंगी । मैं देवराज खुद नित्य तुम्हारे पैर दबाऊँगा ।

अह०—(काँपते हुए स्वरमें) क़सम खाओ—सचमुच मुझे प्यार करते हो ?

इन्द्र—फिर भी संदेह बना है ? पूछती हो, प्यार करता हूँ ? हाय प्रिये ! प्राणेश्वरी ! इतना अधीर आग्रह, इतनी ज्वलन्त वासना, तुम्हारी समझमें नहीं आती ?

अह०—तो चलो, मैं तुम्हारे साथ आज कलंकके सागरमें फाँदूँगी । इस राहसे लौटना चाहती हूँ, लेकिन हाय, लौटनेकी सामर्थ्य नहीं है । चलो । मगर पुत्र शतानंदका क्या होगा ?

इन्द्र—उसे छोड़ जाओ; तुम्हारे चेला और चेली दोनों उसका पालन करेंगे ।—अभी रात बाकी है । चलो ।

अह०—कहाँ चलोगे ?

इन्द्र—स्वर्गको ।

अह०—ना ना—स्वर्गको नहीं ।

इन्द्र—क्यों प्राणेश्वरी ?

अह०—पूछते हो "क्यों ?" जब स्वर्गमें राह-घाटमें दिव्यांगनाएँ मेरी ओर उँगली उठाकर कहेंगी कि "यह भ्रष्टा गौतमकी स्त्री है" तब मेरा मुँह क्या लज्जासे लाल न हो उठेगा ? लज्जाके मारे पृथ्वीमें समा जानेको मेरा जी न चाहेगा ?

इन्द्र—मैं तुम्हें एकान्त भवनमें, अलग, सबसे दूर रक्खूँगा । कोई तुमको न जानेगा ।

अह०—नहीं प्रियतम ! उसकी अपेक्षा चलो—किसी दूर जनशून्य द्वीपमें, सागरके किनारे, अथवा पहाड़की चोटीपर चलो; जहाँ मनुष्यकी साँस भी नहीं पहुँचे । जहाँ कानोंमें अपनी बदनामीकी भनक न पड़े, जहाँ अलक्ष्य एकान्तस्थानमें सुखसे परस्पर नित्य सदा अतृप्त विलासके साथ आनन्द भोग करें, वहाँ चलो । वहाँ मैं समझूँगी कि यह विश्व जनशून्य है—केवल तुम और मैं हूँ । वहाँ हम इस क्षुद्र मिलनकी नावको, अपार गंभीर प्रेमसागरमें—उसके गाढ़, स्वच्छ, फेनिल हिलकारोंके बीचमें, अनेक युगोंतक, खेते चले जायँगे ।

इन्द्र—बहुत अच्छा । चलो, इसी घड़ी चल दें । शतानन्द सो रहा है । सारे वनमें सन्नाटा छाया है—एक पत्ता तक नहीं हिलता ।

अह०—पानी पड़ रहा है ।

इन्द्र—यह और अच्छा है । रातके अंधकारमें, शीकर-शीतल निस्तब्ध पिछली रातमें, सारा विश्व मुर्देकी तरह अचेत पड़ा सो रहा है । जल्दी आओ ।

अह०—चलो । (जाना चाहते हैं ।)

शता०—(जागकर) मा ! मा !

अह०—अब क्या करूँ ? पुत्र जग पड़ा है !

इन्द्र—बालक फिर सो गया ! चलो—जल्दी चलो । देर क्यों करती हो ?

अह०—अच्छा चलो ।

शता०—मा ! मा कहाँ गई !

इन्द्र—चुप बालक !—अहल्या पुत्रको चुप करो । नहीं तो यह सब तैयारी निष्फल कर देगा ।

अह०—चुप शतानन्द।

शता०—मा! यह कौन है? मा! तुम कहाँ जाती हो?

इन्द्र—इस अभागे बालकने सब काम बिगाड़ दिया!

अह०—अब क्या करूँ?

शता०—मा-मा, भूख लगी है—

इन्द्र—गला घोट दो।

शता०—मा, भूख लगी है।

अह०—फिर?—अच्छा तो ले जन्म भरके लिए तेरी भूख मिटाये देती हूँ। (जाकर पुत्रका गला घोट देती है।)

इन्द्र—पापी जन्म भरके लिए चुप हो गया। जल्दी चली आओ।

अह०—यह क्या किया! अपने बालककी हत्या कर डाली?

इन्द्र—चलो, बाहर कौए बोलने लगे। आओ। (बाहर जाता है)

अह०—चलो चलें!—समझ गई। मैं नरकके राज्यमें उतर आईहूँ! अच्छा तो फिर विश्वास, भरोसा, ममता और पुण्य—सबसे बिदा होती हूँ।—आ, पापके कराल राज्य, गहरे अंधकारके साथ आकर पृथ्वीको ढक ले।

(जाना चाहती है।)

[माधुरीका प्रवेश।]

माधुरी—शतानंद क्यों रो रहा है?—गुरुपत्नी! तुम इस वेषसे इतने तड़के कहाँ जा रही हो?

अहल्या—पकड़ ली गई।

इन्द्र—(बाहरसे) आओ—शीघ्र चली आओ। (बाहर शब्द होता है)

[इन्द्रको पकड़कर चिरंजीवका प्रवेश।]

चिरं०—अरे भगोड़े, अब कहाँ जायगा ?

इन्द्र—अगर प्राण प्यारे हों तो कहता हूँ, छोड़ दे।

चिरं०—छोड़ता हूँ बेटा, अभी—ठहर जा !

(दोनो लड़ते हैं। इन्द्र चिरंजीवके ऊपर वज्रकी आग छोड़ता है और चिरंजीव गिर पड़ता है।)

अह०—यह क्या—यह क्या हुआ !

इन्द्र—शीघ्र चली आओ प्राणेश्वरी।

(अहल्याका हाथ पकड़कर खींचते हुए इन्द्रका प्रस्थान।)

तीसरा अंक ।

पहला दृश्य ।

स्थान–जनकका महल ।

समय–प्रातःकाल ।

[जनक, गौतम, चिरंजीव, शतानंद ।]

गौतम–बंधु, क्या कहूँ–प्रवाससे लौटकर देखा तो आश्रमकी कुटी जनशून्य मिली। प्यारी अहल्याका पता नहीं । मेरी कुटीका शिखर विषादसे जैसे झुका हुआ है । कुटीके आँगनमें घासफूस उगकर जैसे अपने पुराने राज्यपर अधिकार कर रहे हैं।

चिरं०–इधर उधर उल्लू घूम रहे हैं !

गौतम–कुटीके पास नीमके पेड़की चोटीपर चमगीदड़ोंने घोंसले बना लिये हैं। सारा बन निस्तब्ध और मलिन हो रहा है। आश्रममें प्रवेश करते ही एक बड़ा भारी सियार चीत्कार कर उठा और मुझे देखकर बाहर निकल गया ! मैंने जोरसे पुकारा–" अहल्या !" दूरपर वनमें मेरे ही शब्दकी प्रतिध्वनिने जैसे मेरा उपहास करते हुए उत्तर दिया–" अहल्या !" उसी समय मेरी चेली माधुरी आश्रमके बाहर निकल आई। उसने कहा–आश्रममें कोई नहीं है। शिष्य चिरंजीव कुटीमें घायल पड़ा हुआ था। प्यारा पुत्र शतानन्द मुर्देकी तरह पड़ा था–बहुत सेवा-शुश्रूषा करनेसे उसके प्राण बचे हैं ! अहल्या लापता है।

जनक–आपने गौतमी (अहल्या) की खोज की है?

चिरं०—एक वनसे जाकर दूसरे वनमें—इस तरह दूर तक—उसकी बहुत कुछ खोज की, मगर कहीं कुछ पता नहीं चला।

जनक—उसके बाद?

चिरं०—मैंने महर्षिसे कहा था, अगर स्त्रीको लेकर आप गृहस्थी नहीं चला सकते, तो फिर यह विडम्बना क्यों? यह विवाहका बंधन क्यों अपने सिर लेते हो?

गौतम—सच कहते हो चिरंजीव।

चिरं०—महाराज! गुरुजीने जब सुना कि अहल्या एक लंपटके साथ चली गई तब कहा—"यह असंभव है।" मैंने कहा—"प्रभू, नहीं, यह शास्त्रकी बात है। प्रोषितभर्तृकामें यह दोष होना कुछ भी असंभव नहीं है।"—मगर राजर्षिजी! नहीं जान पड़ता, उस लंपटने मेरे क्या खींचकर मारा था। वह शस्त्र तेजमें अग्निके समान और अद्भुत था।

गौतम—राजर्षि! अब जीनेकी श्रद्धा या अनुराग नहीं है। संसारमें रहनेको अब जी नहीं चाहता। आज इस वनकी बस्तीको छोड़कर अपने चेले और चेलीके साथ जाता हूँ।

जनक—कहाँ जाइएगा मित्रवर?

गौतम—बहुत दूर कैलास पर्वतको जाऊँगा। सुना है, वह पर्वत बड़ा ही मनोहर और एकान्त निर्जन है। मैं वहाँ जाकर अत्यन्त आग्रहके साथ अपनी सब कामना, सब साधना, उसी विश्वनियन्ता जगदीश्वरके चरणोंमें लगा दूँगा।

जनक—अपने ही तपोवनमें रहकर तप क्यों नहीं करते?

गौतम—प्रियमित्र, यहाँ रहकर तप नहीं कर सकूँगा । मेरा रम्य तपोवन अनेक सुखस्मृतियोंसे परिपूर्ण है । वह सदा मनमें बीती हुई बातें लाकर चित्तको उचाट करता रहेगा ।

जनक—आपकी दशा बहुत ही करुणाजनक है ।

गौतम—मैं समझता हूँ, यह वेदना शायद उस प्रभुका मंगलमय विधान है । इतने दिनोंतक मायामोहमें पड़कर, आत्मसुखरत होकर, मैं उस विश्वेश्वरको भूला हुआ था । इसीसे शायद उस दयामय प्रभुने वह बंधन काटकर मुझ अकिंचन दासको अपनी ओर खींच लिया है। धन्य हो जगदीश्वर! तुम्हारी मंगलदायिनी इच्छा पूर्ण हो । (भगवान्के लिए प्रणाम करके)—मित्र जनक! इस अपने प्राणाधिक पुत्रको तुम्हारे हाथमें सौंपता हूँ । इसे तुम देखना ।

जनक—अच्छी बात है । मैं इसे अपने पुत्रसे बढ़कर समझूँगा और इसका पालन करूँगा ।

गौतम—प्राणाधिक पुत्र ! शतानंद ! जाता हूँ । मैं तेरा बहुत ही निष्ठुर पिता हूँ । तू बचपनहीसे माता-पिताके स्नेह-सुखसे वंचित है । तेरी मा तुझे छोड़ गई है । मैं भी ममताहीन होकर तुझे छोड़ जाता हूँ । जाता हूँ बेटा ! कभी कभी मुझे याद कर लेना ।—ना, ना, भूल जाना—अपने हृदयसे निष्ठुर पिताकी यादको मिटा देना, जड़ मूलसे उखाड़ कर फेक देना ।—प्यारे पुत्र ! तू समझ लेना कि जन्मसे ही तेरे मा-बाप नहीं थे । (चुंबन)—अभिन्नहृदय मित्र जनक ! तुम्हारे आश्रयमें इस बालकको रक्खे जाता हूँ ।—जाता हूँ बेटा ! (चुंबन) मित्र ! इस बालकको देखना । यह बालक असहाय है। और क्या कहूँ ? तुम सब

जानते हो। प्रियवर! इसे देखना। पुत्र शतानन्द मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा है।—जाता हूँ बेटा! (चुंबन) राजर्षि, क्षमा करना—इस अभागे असमर्थ वृद्ध गौतमको क्षमा करना।

जनक—नहीं जानता, आपका भाग्य ऐसा क्यों है? अथवा मित्र! इस तीव्र यातनाको सहकर तुम अनन्त अक्षय पुण्यके भागी बन रहे हो।

गौतम—अच्छा तो अब जाता हूँ।

चिरं०—गुरुजी! आप एक सौ वार "जाता हूँ, जाता हूँ" कह चुके हैं। इस वारंवार "जाता हूँ—जाता हूँ" कहनेका अर्थ मैं खूब जानता हूँ—आपकी जानेकी इच्छा नहीं जान पड़ती। अगर आपकी जानेकी इच्छा नहीं है, तो कौन जानेके लिए आपको अपने सिरकी कसम रखा रहा है? यहीं रहते क्यों नहीं?

गौतम—नहीं चिरंजीव, चलो, माधुरी कहाँ है?

चिरं०—वह बाहर द्वारपर खड़ी हुई रो रही है—जो सदासे स्त्रीजातिका प्यारा काम है!

गौतम—अच्छा तो चलता हूँ! (जनकसे) मित्र, जाता हूँ!

जनक—अच्छा जाइए मित्रवर!

गौतम—एक बार—बस और एक बार पुत्रका मुँह चूम लूँ।—बेटा! प्राणोंसे प्यारे! अपने पिताको, क्या तू और एक बार अपने पिताको चुंबन न देगा? (शतानंदका मुख चूमता है) बेटा! एक बार "पिता" कहकर पुकार, मैं सुनें जाऊँ।

शता०—पिता! पिता!

गौतम—ना, मैं न जासकूँगा। गृहस्थ होकर यहीं रहूँगा।

चिरं०—सो तो मैं पहलेहीसे जानता था। (बैठ जाता है)

गौतम—हा अबोध बालक! हा निष्ठुर! बेटा! बेटा! तूने अपने अमृतमय स्वरसे मुझे क्यों पुकारा?—अब कहाँ जाऊँगा?—वत्स! प्रिय! प्राणाधिक! तूने यह क्या किया?—नहीं, बस, जाता हूँ। बालक! मायावी शिशु! तू मेरा कौन है? कोई नहीं है। (वेगसे प्रस्थान।)

चिरं०—लेकिन ऐसा तमाशा तो मैंने कभी नहीं देखा। (प्रस्थान।)

जनक—गौतम! इस जगतमें तुम्हारी तुलना नहीं है।—बेटा शतानन्द! चलो, अन्तःपुरमें चलो। (दोनोंका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य।

स्थान—राजा दशरथकी सभा।

समय—प्रातःकाल।

[दशरथ, विश्वामित्र, वशिष्ठ, राम और लक्ष्मण।]

विश्वा०—महाराज, दोनों कुमार मुझे दे दीजिए! तुमसे फिर इनके लिए प्रार्थना करता हूँ।

दशरथ—तो मैं क्या यह समझूँ कि अमित प्रभाववाले महर्षि विश्वामित्र राक्षसोंका अत्याचार मिटानेमें असमर्थ हैं?

विश्वा०—ब्राह्मण अगर जप-तप-पूजा छोड़कर समर करेंगे तो फिर तुम ही बताओ, क्षत्रियके लिए क्या काम रह जायगा?

दश०—आपका कहना सच है प्रभू। मैं आपके साथ अपना एक

सेनापति भेजता हूँ। अथवा मैं खुद चलकर युद्धमें राक्षसोंको मारूँगा। ये कुमार अभी बालक हैं; प्रचंड राक्षसोंके साथ कैसे युद्ध करेंगे ? क्षमा कीजिए।

विश्वा०—राजन्! मैं यह क्या सुन रहा हूँ ? क्षत्रिय राजा युद्धभूमिमें अपने बालकोंको भेजते इतना कातर भाव दिखा रहा है ? अच्छी बात है! तुम क्षत्रिय हो ?

दश०—भगवन्! ये अभी बालक हैं।

विश्वा०—वारंवार वही एक बात—"ये बालक हैं!" दशरथ! क्षत्रियका बालक जिस दिनसे हाथमें शस्त्र पकड़ सकता है, उस दिनसे उसका काम युद्ध ही होता है, युद्ध ही उसकी कामना है, सोते और जागते उसे युद्धहीका ध्यान रहता है—यह क्या तुम नहीं जानते ?

दश०—महर्षि! ये दोनों बालक अभी युद्धविद्यामें निपुण नहीं हैं।

विश्वा०—हा! धिकार है! "क्षत्रियका बालक बारह वर्षकी अवस्थामें युद्धशास्त्रकी शिक्षासे खाली है"—यह कहते अपमानसे तुम्हारी जीभ सिकुड़ नहीं गई ? लज्जासे मुँह लाल नहीं हो आया ?

दश०—ऋषिवर, आप जानते हैं, बहुत दिनोंतक तप करके मैंने इन पुत्रोंको पाया है।

विश्वा०—महाराज! इन बहानोंको रहने दो। स्पष्ट कहो—दोगे या नहीं दोगे ?

वशिष्ठ—राजन्! ऋषिकी प्रार्थना पूरी करो। यह महर्षि स्वयं सहायक हैं, तुम्हारे पुत्रोंके लिए कुछ भय नहीं है।

दश०—गुरुदेव ! तो फिर वही हो।—मुनिवर, इन मेरे प्राणाधिक प्रिय कुमारोंको आप ले जाइए। प्रभु, आज मैं अपने इन आँखोंके तारे प्यारे पुत्रोंको आपके हाथमें सौंपता हूँ। राम और लक्ष्मणको ले जाइए।

विश्वा०—राजन्, कृतार्थ हो गया। मुझे मालूम है कि पिताके अत्यन्त अधिक स्नेहके कारण दोनों कुमार अभीतक शस्त्रविद्यामें निपुण नहीं हो सके हैं। इसीसे इस समय मैंने तुमको झिड़का भी। महाराज, तुम अत्यन्त अधिक स्नेहके कारण पिताके कर्तव्यपर ध्यान नहीं देते। यह तुम्हें नहीं सोहता। मैं तुमसे तुम्हारे सेनापतिकी सहायता ही माँगने आया था। लेकिन यहाँ आकर देखा तो जान पड़ा, तुम्हारे दोनों कुमार अभीतक अस्त्र-शस्त्रकी विद्यासे ख़ाली हैं। राजन्, बिना युद्ध किये युद्धकी शिक्षा प्राप्त करना असंभव है। इसीसे मैं तुमसे राम और लक्ष्मणको माँगता हूँ। कुछ चिन्ता नहीं है, मैं राम लक्ष्मणको शस्त्रकौशलकी शिक्षा दूँगा और इनके निकट रहूँगा। ये शीघ्र ही सकुशल अपने पिताकी गोदमें आजायँगे।

दश०—ऋषिवर, वही हो। (स्वगत) भरत और शत्रुघ्न तो मेरे पास रहेंगे। भाग्यवश वे दोनों कुमार यहाँ मौजूद नहीं थे। उनका होना ऋषिको मालूम नहीं है—यही कुशल है। (प्रकट) अच्छी बात है। आप इन दोनोंको ले जाइए। (सबका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य ।

स्थान-वनके भीतरकी राह ।

समय-गोधूलि ।

[चिरंजीव और माधुरी ।]

चिरं०-तू मेरा साथ नहीं छोड़ेगी ?

माधुरी-नहीं स्वामी ।

चिरं-(गाता है—)

हायरे संसार, सब ही असार, विधिकी महा चूक । हायरे० ॥
'अस्ति' देखते 'नास्ति' वेशी, सृष्टि देखते शून्य ।
ढेरके ढेर पापके भीतर कितना सा है पुण्य ॥
प्रकाशसे है अधिक अँधेरा, स्थलसे ज्यादा सिंधु ।
महामृत्युके बीच जन्म है छोटा सा जलबिंदु ॥
सत्य देखते मिथ्या बेशी, धर्म देखते तंत्र ।
भक्ति देखते कीर्तन बेशी, पूजासे है मंत्र ॥
फूल देखते पत्ते बेशी, मणिसे ज्यादा कर्दम ।
स्वल्प शांतिके बाद प्रियाका तर्जन गर्जन हर्दम ॥

चिरं०-अब भी कहता हूँ—तू लौट जा ।

माधुरी-क्यों, मैं तुम्हारा क्या अनिष्ट करती हूँ ?

चिरं०-अनिष्ट ?-सब अनिष्ट ही तो कर रही है । तू धीरे धीरे मेरे पैरोंसे चिमटी जा रही है । लौट जा ! नहीं जायगी ?

माधुरी-नहीं ।

चिरं-(हताश भावसे लंबी साँस लेकर फिर गाता है—)

ब्रह्माजीसे विष्णु बड़े हैं, ब्रह्मा देते झाँसा ।
विष्णुदेवसे किन्तु अभी मैं रखता हूँ कुछ आशा ॥
भर्त्तासे है भार्या ज्यादा, भर्ता घरका कर्ता ।
मगर रसोईके बारेमें स्त्री भर्ताकी भर्ता ॥
शक्ति देखते भक्ति बड़ी है, शक्तकी अपनी शक्ति ।
शक्ति भक्तको देते रहते अजी महत्तर व्यक्ति ॥
पत्नीसे है साली बढ़कर, बहन न जिस नारीके ।
वह है त्यागयोग्य शास्त्रोंमें, वचन बड़े ऋषियोंके ॥

चिरं०—फिर भी नहीं गई ? बात क्यों नहीं सुनती ? यही तो तुझमें दोष है ।

माधुरी—यह आज्ञा न करो प्रभू ! तुम मेरे स्वामी हो, मैं तुम्हारी स्त्री हूँ । जहाँ तुम्हारी गति है, वहीं मेरी गति है । शास्त्र कहता है—स्त्रीको छायाकी तरह पतिके पीछे चलना चाहिए ।

चिरं०—तो कहना चाहिए कि शास्त्रके अनुसार पतिकी अवस्था बहुत ही शोचनीय है । जहाँ वह जायगा, वहीं उसके साथ पहरा रहेगा ? ज़रा भी छुट्टी नहीं पावेगा ? पतिने क्या पूर्वजन्ममें ऐसे भयानक पाप किये थे ? अब भी लौट जा ! नहीं तो अच्छा न होगा—कहे देता हूँ । नहीं जायगी ?

माधुरी—नहीं ।

चिरं—(फिर गाता है—)

बाँह देखते पीठ भली है, क्रोध देखते क्रन्दन ।
दास्यभावसे कहीं भला है, यारो फाँसी-बन्धन ॥
शत्रु खुलासा भला, न अच्छा कपटी जीका मित्र ।
असल प्रेमसे भला काव्यमें लिखा प्रेमका चित्र ॥

गुप्त प्रेमका फल है पीछे बहुत ज़रूरी दंड ।
ब्याह करे जो वह है भारी मूर्ख भंड पाखंड ॥
'मगर' कहीं अच्छा पत्नीसे, कहते हैं सब शास्त्री।
चाहे 'मगर' पकड़ कर छोड़े, पकड़ छोड़ती ना स्त्री ॥

चिरं०–देख, तू क्या भूतकी तरह मेरे सिरपर सवार ही रहेगी ? अगर अब भी नहीं लौट जायगी तो इसी जगह तेरा गला घोटकर तुझे मार डालूँगा और कहीं गढ़ा खोदकर गाड़ दूँगा। महर्षि गौतम बहुत आगे बढ़ गये हैं । सन्ध्या हो आई है। रातमें कोई आदमी भी आता-जाता नहीं देख पड़ता ।

माधुरी–मैंने ऐसा क्या अपराध किया है स्वामी ?

चिरं–तू पिशाची डाइन है । तू अपने आग्रह-आदरमें, स्नेहमें, अपनीकी हुई सेवामें, दिनरात मुझे फँसाना चाहती है । मुझपर जादू करती है, टोना-मंत्र करती है । मेरा सर्वनाश करनेकी तदबीर कर रही है। बीच बीचमें मुझे जान पड़ता है, जैसे मैं तुझे कुछ कुछ प्यार करने लगा हूँ । पहले तो मैं तुझे प्यार नहीं करता था ?

माधुरी–सो अगर कुछ प्यार करने लगे हो तो उसमें हर्ज क्या है ? स्त्रीको अगर स्वामी प्यार करे तो इसमें क्या कुछ दोष है ?

चिरं०–फिर बहस शुरू कर दी ।–नहीं लौटेगी ?

माधुरी–नहीं ।

चिरं०–(सहसा) अरे बापरे बाघने खा लिया—

(माधुरीको धक्का देकर गिरा देता है और आप भाग जाता है ।)

चौथा दृश्य ।

स्थान—कैलासपर्वतका शिखर ।

समय—सन्ध्याकाल ।

[अकेली अहल्या ।]

अहल्या—बहुत स्थानोंमें घूमी !—पुर, जनपद, मैदान, कुंज, उपवन, पर्वत शिखर आदिमें फिर आई । मगर सुख नहीं पाया !—सुख कहाँ है ?—नित्य हृदयको फाड़कर एक मर्मभेदी लंबी साँस निकलती है । आकुल अधीर चित्तको अनन्त विषाद आकर छालेता है । मिलनकी तीव्र मदिरा पीकर क्षणभरके लिए यह तीक्ष्ण यन्त्रणा भूल जाती हूँ । किन्तु तत्कालही फिर वही पापकी विराट् मूर्त्ति रह रहकर आँखोंके आगे नाचने लगती है । सहसा आँख उठाकर देखती हूँ तो सामने एक भयानक गढ़ा देख पड़ता है, जिसकी थाह नहीं है, जिसमें प्रकाश नहीं है, जिसमें शब्द नहीं है, जिसका कराल मुख नित्य निरन्तर मुझे ग्रसनेके लिए फैला रहता है ।—यही परिणाम है ! इसीके लिए मुझ पापिनने घृणित व्यभिचार और पुत्रकी हत्या की ! वह बालकके अंतिम रोनेका शब्द अभी तक मेरे कानोंमें गूँज रहा है । "मा, मा"—यह क्या ? मुझे पुत्रने पुकारा ! ना, यह प्रतिध्वनि है ! यह कल्पना है ! यह कल्पना है ? ना, यह कल्पना नहीं है ।—धरतीके नीचेसे, आकाशके छोरसे, यह रोनेका शब्द आ रहा है । दिनके प्रखर प्रकाशको ढककर, रातके गहरे अन्धकारको और भी घना करके, सुस्वर संगीतको छाप-कर—कर्कश बनाकर, पर्वतोंको फोड़कर, शून्य आकाशको फाड़कर

यह रोनेका शब्द निकल रहा है। वह करुण कातर रुँधा हुआ शब्द— वह हाथ उठाकर नीरव अनुनय, वह माताके आगे हाथ उठाकर सन्तानकी निष्फल जीवन-भिक्षा—ओः !—अहो जगदीश्वर! कामके प्रलोभनमें पड़कर नारी इतनी अंधी हो जाती है! माता इतनी निर्मम हो जाती है !—वह फिर पुत्रने पुकारा क्या ? आती हूँ बेटा ! आज उस पापके दागको अपने रक्तसे धोऊँगी। यह मेरे पास कटार है। हे चमचमाते हुए, तीक्ष्ण, सुंदर, क्षुद्र शस्त्र ! तू इतना क्षुद्र होने पर भी इतना भयंकर है ! आज प्रिय प्रणयीके समान मेरी छातीसे तू लग जा प्यारे शस्त्र ! अहल्याका गर्म रुधिर पी ले—संसारसे कलंकिनी अहल्याका नाम मिटा दे !—शतानंद बेटा ! फिर तूने पुकारा ? आती हूँ, ठहर जा—

(छातीमें कटार मारना चाहती है। पीछेसे मदन आकर उसका हाथ पकड़ लेता है।)

अहल्या—तुम कौन हो ?

मदन—क्षमा करना देवी ! तुम्हारे पैरोंके नीचे यह शस्त्र रक्खे देता हूँ। इसके बदले यह अमृतसे भरा हुआ पात्र लो और लाल लाल होठोंसे लगा लो।

[रतिका प्रवेश।]

रति—क्या करती है ओ मूढ़ नारी ! यह वसन्त ऋतु है; ऐसी मनोहर वायु चल रही है; वह स्वच्छ नील आकाशमें पूर्ण चंद्रमा निकल रहा है; यह फूले हुए वृक्षोंसे सुशोभित निकुंज निकट है। सखी, यह स्थान और समय क्या आत्महत्या करनेके योग्य है ? छी छीः !— हाँ जब मलिन आकाशसे पानी गिर रहा हो, जब सूर्यके प्रकाशसे

शून्य कीचड़का दिन हो, बिल्कुल ही नीरस तीसरा पहर हो, कोयल न बोलती हो, गर्म जलकणयुक्त वायु लंबी साँसें ले रही हो, सूने मैदानों और खेतोंमें पानी भरा हो, मार्गोंमें कीचड़ हो, तब आत्महत्या करो तो कोई हर्ज नहीं । कमसे कम उस समय आत्महत्या करना इतना रूखा और इतना असंगत किसीको नहीं जान पड़ेगा ।

मदन—यह वसंतका समय है, तुम भी सौन्दर्यकी राशि और जवानीमें चूर हो । इस समय तुम आत्महत्या कर रही हो? यह क्या सोहता है? क्या सहा जायगा?—यह तो कोरी दिल्लगी जान पड़ती है—यह तो बहुत ही असभ्यताका काम है सुन्दरी !

रति—सखी, मरना तो एक दिन होगा ही । मौत तो आप ही आती है, उसे बुलाना नहीं पड़ता । कितने दिनकी ज़िंदगी है? जो संक्षिप्त है उसे और भी संक्षिप्त करना किस लिए? ऐसा करनेकी क्या ज़रूरत है? जबतक जीवन है, तबतक जहाँतक संभव हो—जिस तरह संभव हो—भोग कर लो ।

अहल्या—प्रिय मित्र और प्रिय सखी ! तुमने सच कहा । लाओ मदिराका पात्र—जली जा रही हूँ—लाओ मदिराका पात्र । पीकर यह तीव्र और तीक्ष्ण हृदयकी ज्वाला बुझाऊँ । (अमृत-मदिराका पात्र लेकर पीती है) और लाओ ! (लेकर पीती है) और लाओ ! (लेकर पीती है) सच कहा सखी "भोग कर लो ।" बादको? उसके बाद? जो होना होगा सो होगा । भोग कर लो ।—फिर शतानंदने पुकारा? जा जा—तू जा मूढ़ बालक ! पुत्र है? कहाँका पुत्र?—पुत्र नहीं है; पुत्र कभी नहीं था । कौन कहेगा कि मैंने पुत्रकी हत्या की है? मैंने पुत्रकी हत्या

नहीं की। ढालो मदिरा और पियो। (फिर लेकर पीती है) नाचो और गाओ, यही ज़िंदगीका मज़ा है!

(मदन और रति गाते हैं—)

फूल रहे हैं फूल सुहाये, गगन चंद्र है उदित मनोहर।
उड़े जा रहे उजले बादल, नील वायुमंडलके ऊपर।
करे कलोल कोकिला वनमें, रहरहकर बोले मीठे स्वर॥
सिरिस आमकी मंजु मंजरी महक रहीं, है मस्त चराचर।
उसे लिये यह हवा आरही, मंद चालसे अठखेली कर॥
ऐसे दिनमें बैठ इस जगह, यह उमंग ऐसे अवसर पर।
मनभाये प्यारे बिन कैसे रहा जाय जीतेजी दमभर॥

अह०—बहुत अच्छा गान है! बहुत अच्छा गान है! आहा—वाहवाह! प्राणेश्वर! कहाँ हैं प्राणेश्वर? मदन, मेरे प्राणनाथको लाकर मुझसे मिला दो—हृदयमें लालसाकी प्रचंड अग्नि प्रबल हो रही है। रति-पति, जाओ, उन्हें बुला लाओ।

[इन्द्रका प्रवेश।]

अह०—(आग्रहके साथ) निष्ठुर प्रणयी! अहल्याको छोड़कर अब-तक कहाँ थे? आओ प्रियतम—मेरे पास आओ! आज इतने चिन्तासे व्याकुल क्यों देख पड़ते हो?

इन्द्र—कारण तो मुझे भी नहीं मालूम।

अह०—चिन्ताको चित्तसे दूर करो। मैं तुम्हारे पास हूँ, फिर भी तुम्हारा मुखमण्डल मलिन है? देखो, कैसी मनोहर पूर्णिमाकी चाँदनी खिली हुई है। जैसे चन्द्रमाके संयोगसे रात हँस रही है। प्रियतम! वह दिन याद है?

इन्द्र—कौन दिन ?

अह०—जिस दिन आकर तुम मेरे सामने खड़े हुए थे हे सुंदर पाप! ठीक उसी जगह, शान्त शुभ्र स्वच्छ चंद्रमा नीले आकाशमें था, और यही चमकीला तारा चंद्रमाके समीप चमक रहा था। ऐसी ही हरीभरी पृथ्वी थी। ऐसी ही स्निग्ध वसन्त-वायु धीमी चालसे चलकर अपने मंद मधुर उच्छ्वाससे हृदय शीतल कर रही थी। इसी तरह दूर पर—

इन्द्र—उस दिनकी बातें रहने दो। मैं इस समय तुमसे एक दारुण बात कहने आया हूँ।

अह०—क्या ? क्या ख़बर है ?

इन्द्र—अहल्या! मुझे इसी घड़ी तुम्हें छोड़कर जाना होगा।

अह०—कहाँ जाओगे ?

इन्द्र—स्वर्गको लौट जाऊँगा।

अह०—स्वर्गको ? क्यों ? क्या यही हमारा स्वर्ग नहीं है ?—यहीं हाथसे हाथ, होठसे होठ, छातीसे छाती मिलाकर सुखभोग करो। सिरके ऊपर अनन्त आकाश फैला है, पैरोंके नीचे विश्वका मधुर उच्छ्वास है—क्या यह स्वर्ग नहीं है ? नहीं नहीं, नाथ, सृष्टिसे स्वर्गराज्यका नाम लुप्त हो जाय। मैं स्वर्ग नहीं जाना चाहती।

इन्द्र—तुम नहीं जाओगी। मैं अकेला ही जाऊँगा।

अह०—अकेले ? अकेले जाओगे ?—और—मैं ?

इन्द्र—तुम—मिथिलापुरीको लौट जाओ—अपने आश्रममें रहो।

अह०—यह तुम्हारी अपूर्व दिल्लगी है!

इन्द्र—दिल्लगी नहीं है । सच कहता हूँ । अहल्या, क्या तुमसे कहना होगा ? तुम समझीं नहीं ?

अह०—क्या समझूँगी ? कुछ नहीं समझी ।

इन्द्र—अच्छा तो सुनो। इतने दिन तुमसे सुखभोग करके मेरी लालसा मिट गई ! अब मैं वह सुख नहीं चाहता ! इन दिनोंका उदास संभोग और शिथिल आग्रह देखकर तुम प्रेमप्रवाहके उतारको नहीं समझ सकीं ? लालसाकी आग बुझ गई—प्यास मिट गई ।

अह०—यह क्या मैं ठीक सुन रही हूँ ? पर्वत, तुम सुन रहे हो ? वृक्ष-गुल्मलता आदि, तुम सुन रहे हो ? वायु, झरने, नील असीम आकाश आदि, तुम सुन रहे हो ? " लालसाकी आग बुझ गई ? प्यास मिट गई ? " नहीं जानती—मैं जाग रही हूँ या सो रहीं हूँ । स्वप्न देख रही हूँ क्या ? "प्यास मिट गई ?" प्रभू, जगत्में क्या कभी प्रेमकी प्यास भी मिटती है ? मेरी प्यास तो नहीं मिटी । देवराज, सच कह रहे हो ? आज तुम्हारी प्रेमकी प्यास मिट गई ?

इन्द्र—अहल्या, तुम अब बालिका नहीं हो । क्या तुम नहीं समझीं कि मैं अब तक जिस बन्धनमें बँधा हुआ था, वह प्रेमका नहीं, लालसाका बंधन था ?

अह०—सच ? यह सच कहते हो ? प्रेम नहीं था ?—वह लालसा थी ? मैं ठीक सुन रही हूँ ? ओः ! मेरी समझमें कुछ नहीं आता । तुम इन्द्र हो ? और मैं अहल्या हूँ ?—यह बात—यहाँ तक ठीक है ? या सब स्वप्न है ? कुछ समझमें नहीं आता ।—ओः !—सिर घूम रहा है ।

(एक वृक्षसे पीठ लगाकर खड़ी हो जाती हैं ।)

इन्द्र—अहल्या, लौट जाओ!

अह०—कहाँ?

इन्द्र—अपने देशको।

अह०—अपने देशको? किसके पास?

इन्द्र—भद्रे, इतने दिनोंके बाद गौतमऋषि आश्रमकों लौट आये हैं।

अह०—क्या कहते हो? किसका नाम ले रहे हो लंपट? वह पवित्र नाम इस जीभपर न लाना—जीभ भस्म हो जायगी! उस पवित्र नामको इस गंदी जीभपर लाकर कलुषित मत करो। मैं अचेत और पागल हो जाऊँगी।—तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, भिक्षा माँगती हूँ, केवल वह नाम मत लो।—उनके पास लौट जाऊँगी? सच? धन्य हो इन्द्र! धन्य है तुम्हारी समझ! यह हास्यकर बात तुमसे कैसे कही गई? लंपटके पापमय स्पर्शसे बिना किसी संकोचके महर्षिके पवित्र चरणोंमें लौट जाऊँगी? उन महर्षिकी पवित्र रसना तुम्हारा जूठा जल पियेगी?—तुम नहीं जानते?—जिस दिन घृणित अभिप्रायसे वह पवित्र आश्रम छोड़कर मैं चली आई, उसी दिन उस पुण्यभूमिमें पैर रखनेका अधिकार भी छूट गया। जिस दिन पापी लंपटका हाथ पकड़ कर मैं नरकके भयानक गढ़ेमें उतर गई उसी दिन स्वर्गमें प्रवेश करनेका अधिकार जाता रहा!—

इन्द्र—अहल्या, अहल्या, सुनो—

अह०—उसी दिनसे उस नरकमें मरणपर्यन्तके लिए तुम ही मेरे सर्वस्व, हृदयवल्लभ, जीवनधन हो गये। अपनेको घृणा करती हूँ, तुम्हारे साथ रहनेको सैकड़ों धिक्कार देती हूँ—तो भी, तो भी तुमको प्यार किया है, तुमको

प्यार करती हूँ, और तुमको प्यार करती रहूँगी। जीवन या मरणमें तुम ही मेरे प्राणेश्वर हो।

इन्द्र—अहल्या, यह युक्ति-तर्क सब वृथा है। मैं स्वर्गका स्वामी देवेन्द्र हूँ, और तुम मानवी हो। मेरे और तुम्हारे बीच प्रेमका संबंध होना भी क्या कभी संभव है?

अह०—अगर असंभव था तो तुमने फिर क्यों एक कुलवधूको बहका कर कलंकित किया? क्यों उसे कहींका नहीं रक्खा? फिर क्यों मुझे उस शान्त पुण्य आश्रमसे खींचकर ले आये? मैं अपने क्षुद्र सुख दुःखको लेकर वहाँ पड़ी हुई थी। तुम उस पूर्णचन्द्रयुक्त सुन्दर पूर्णिमाकी रातको, स्निग्ध संध्याकालके पवनके झोकोंमें, कोकिलाके कुहू-शब्दमें, क्यों मुझे देख पड़े? कुचक्र रचकर तुमने मुझे क्यों बहकाया। फंदा डालकर क्यों वनकी मृगीको फँसाया? दो दिन आदर करके, अंगोंपर हाथ फेरकर, पीछेसे गलेपर छुरी फेरनेके लिए, क्यों उसे अपने जालमें फँसाया?

इन्द्र—तुम्हारा यह सब प्रलाप बिल्कुल निष्फल है!—अहल्या, लौट जाओ। यही तुम्हारे लिए अच्छा है।

अह०—(दमभर सोचकर) सुनो प्रियतम! मुझे तुमसे कुछ कहना है। (हाथ पकड़ती है)

इन्द्र—छोड़ो—हाथ छोड़ो!

अह०—यहाँ तक जी हट गया? अच्छा तो जाओ निर्मम निष्ठुर! जाओ, स्वर्गको लौट जाओ।—अहल्याको भूल जाओ। ना देवेन्द्र, उसे नहीं भूल सकोगे। जाओ, स्वर्गको लौट जाओ। लेकिन याद रक्खो

इन्द्र, मेरी स्मृति तुम्हारे हृदयमें रक्तके साथ मिलकर सदा बनी रहेगी। जाओ, जाओ—सोते, जागते, चलते-फिरते, सदा नित्य मेरी भयानक छाया देखकर तुम काँप उठोगे। जाओ—स्वर्गको लौट जाओ। मैं अनन्त दुःस्वप्नकी तरह तुम्हारे अनन्त जीवनके साथ रहूँगी।

इन्द्र—अच्छी बात है अहल्या! तो फिर मैं जाता हूँ।

(जाना चाहता है)

अह०—(सहसा इन्द्रको पकड़कर, पैरोंपर गिरकर) कहाँ जाते हो? जाना नहीं प्रियतम! अभी तक मैं युवती हूँ। तुमने दसवर्ष तक अवश्य इस रूपकी तीव्र मदिराको पिया है, लेकिन पात्रको देखो, अभी और बाकी है, मैं अभी और भी दे सकती हूँ। आँख उठाकर इन घने लंबे काले चिकने केशोंको देखो, इन उज्ज्वल कुंदकली ऐसे दाँतोंको देखो, इस सुंदर सुगठित देहलताको देखो, इन लालसाविह्वल विशाल नेत्रोंको देखो, इन लाल लाल रसीले होठोंको देखो, इन पीन उन्नत पयोधरोंको देखो। जितनी रूपकी मदिरा चाहोगे उतनी दूँगी; जितनी चाहो, पियो।—पर जाओ नहीं।

इन्द्र—तुम्हारा अनुनय-विनय करना बिल्कुल निष्फल है। मैं जाता हूँ।

अह०—सच? जाओगे ही? कहाँ जाओगे धूर्त? और किसी कुल-कामिनीको छलने जाओगे? मेरे मुँहमें कलंककी कालिमा पोतकर सुखी होओगे? मूर्ख-निर्मम-लंपट! मुझे कहींका न रखकर—नरकमें ढकेल कर स्वर्गको जाओगे? जाओगे? जाओगे? लो, जाओ इन्द्र—जाओ, लेकिन स्वर्गको नहीं—यमपुरीको!

(कमरसे छुरी निकालकर इन्द्रके कंधेमें भरपूर भोंक देती है ।)

इन्द्र–ओः ! (गिर पड़ता है) क्या किया पिशाची राक्षसी !

मदन०—शास्त्रमें लिखा है "यः पलायति स जीवति" बाबा–भागो !

(मदन और रतिका भाग जाना ।)

अह०–इसी हाथसे मैंने अपने पेटसे पैदा बच्चेको मारा है—गला घोट कर उसकी नसोंमें बह रहे गर्म रक्त प्रवाहकी शीघ्र गतिको बंद कर दिया है । और, आज उसी हाथसे, इस खूनसे, उस खूनका बदला चुकाया है ! देवराज—इतने दिनोंपर आज तुमने प्रेमिका रमणी देख ली ? देखो आज वही रमणी भैरवी है !–हाः हाः ! यहीं सड़ो–यहीं मरो । वनके गिद्ध और सियार तुम्हारे शरीरको खाकर तृप्त हों ।

(पागलकी तरह अट्टहास करते करते प्रस्थान ।)

इन्द्र–पिशाची–हत्यारिन–ओः !–

[गौतम और चिरंजीवका प्रवेश ।]

चिरं०–अरे यह कौन पड़ा है बिल्कुल हिलता डुलता नहीं–सारा शरीर रक्तसे नहाया हुआ है ! मारनेवाला कहाँ भाग गया ?

गौतम–देखूँ, नाड़ी देखूँ । (नाड़ी देखकर) अभी तक जीवित है । आश्रममें उठाकर ले चलो चिरंजीव । चेष्टा करके देखूँ–शायद इसे बचा सकूँ ।

(दोनों इन्द्रको उठाकर ले जाते हैं ।)

चौथा अंक।

पहला दृश्य।

स्थान–शचीका महल।

समय–सन्ध्याकाल।

[देवियोंके साथ शचीदेवी बैठी हैं।]

शची–सो मैं क्या करूँ ?

अंजना–सच तो है, तुम क्या करोगी ?

कालिंदी–लेकिन बात तो अच्छी नहीं है। पाँच सालसे तुम्हारे स्वामीका पता नहीं है।

अंजना–पाँच पाँच साल ग़ायब रहना ! यह क्या साधारण चिन्ताकी बात है बहन !

शची–तुम ही बताओ बहनो, उसके लिए मैं क्या कर सकती हूँ ?

अंजना–सो तो ठीक ही है बहन–तुम क्या कर सकती हो !

स्वाहा–लेकिन बहन, लोग तो इधर उधर कानाफूसी करते हैं।

अंजना–करते तो हैं ही। लोग क्यों रियायत करने लगे बहन ?

शची–कानाफूसी करें; क्या कर लेंगे ?

अंजना–हाँ–कानाफूसी करके चुप हो जायँगे।

वारुणी–लेकिन स्वामीकी खोज-खबर लिये बिना काम कैसे चलेगा ? पता तो लगाना ही चाहिए।

अंजना—हाँ, पता लगाये विना कैसे चल सकता है ? खोज-खबर तो लेनी ही चाहिए।

शची—और यह आदत तो उनकी कुछ नई नहीं है।

अंजना—बेशक, यह तो उनकी पुरानी आदत है।

कालिंदी—तब भी बहन, वह स्वामी तो हैं।

अंजना—सो तो हैं ही। यह कौन कहे, कि स्वामी नहीं हैं। बाजे बजा कर ब्याह हुआ है—ब्याहकी सब रीतियाँ हुई हैं। दस्तूरके माफिक ब्याह किये हुए स्वामी हैं।

स्वाहा—सो बहन, उनका पता तो लगाना ही चाहिए।

अंजना—पता लगाये बिना काम कैसे चलेगा ?—पता तो लगाना ही चाहिए।

शची—तुम ही बताओ, कहाँ पता लगाऊँ ?

अंजना—हूँ—कहाँ पता लगाया जाय ?

वारुणी—न-जानें कहाँ गोता लगा गये !

अंजना—(निराशा-सूचक भावसे मुँह मटकाती है।)

कालिंदी—जब उनके साथ मदन और रतिका जोड़ा घूम रहा है, तब एक कोई कलंककी घटना हुए बिना नहीं रह सकती।

अंजना—कलंक ऐसा कलंक ! एकदम कान नहीं दिये जाते !

स्वाहा—एलो, नाम लेते ही आगईं !—

शची—कौन !

स्वाहा—रति देवी।

अंजना—हाँ रति ही तो हैं।

कालिंदी–नहीं जी–रति तो नहीं हैं!

अंजना–हाँ जी, रति कहाँ हैं!

वारुणी–हूँ, रति ही तो हैं।

अंजना–रतिके सिवा और कोई है ही नहीं।

कालिंदी–ऊँहूः, रति नहीं हैं।

अंजना–ना ना–रति नहीं हैं।

[रतिका प्रवेश।]

शची–आओजी रति!

अंजना–क्योंजी! इतने दिनोंके बाद दर्शन दिये!

कालिंदी–अकेली ही आई हो क्या?

स्वाहा–तीर्थयात्राको गई थीं क्या जी?

वारुणी–अजी–देवराजकी क्या खबर है?

अंजना–हाँ, वही ख़बर पहले सुनाओ।

रति०–(गाती है—)

केवल प्रेम-बनिज मैं करती।
और न कछु जानहुँ मैं सजनी, और बीच नहिं परती॥
बिंबाधरमहँ सुधारासि, या कुंददसनमहँ हाँसी।
मधुर चितौन स्याम पुतरिनकी–यह करि बनिज विचरती॥
कारे केस बाँधिवो बेनी, ताहि पीठ पर डरिबो।
इनमहँ मैं प्रवीन हौं; परधन जमाखरच सो करती॥
कारे रँगकहँ माँजि धोइकै गोरे रंग बनाई।
त्यों सारी रंगीन पहिरि तिय किमि पिय कहँ बस करती॥
जो सुनिबो चाहौ इन बातन तौ मैं कछु कहि सकिहौं।

याद रहैं केवल ये बातें, सब परपंच बिसरती ॥
बाँकी काजर-रेख लगावहुँ नैनन, पाँयन जावक ।
अलंकार सब साजि माँगहू गजमुक्तन मैं भरती ॥
नयन नचैबो, हृदय ढाँकिबो आँचल खैंचि अदा सों।
अवसर देखि बहैबो आँसू—सकल कला ये धरती ॥
यह प्रसंग जो पूछहु मोसों, तौ मैं कछु कछु जानौं—
कछु कहि सकौं, और बातनमहँ, देवी, मैं नहिं परती ॥

शची—इस समय दिल्लगी रहने दो !

अंजना—हाँजी—यह क्या दिल्लगी करनेका समय है बहन ?

रति—नहीं तो फिर और कब समय होगा ?

अंजना—यह भी ठीक है। अभी न दिल्लगी करेंगी तो फिर कब करेंगी ?

कालिंदी—उस स्त्रीका नाम क्या है जी ?

रति—अहल्या ।

वारुणी—देवराज कहाँ हैं ?

रति—उनकी अवस्था लौट कर आनेके लायक़ नहीं है।

स्वाहा—कैसे ?

शची—पहेली बुझाना रहने दो। क्या ख़बर है—खुलासा कहो।

रति—बहुत सी बातें हैं। पहले भीतर चलिए—वहीं सुनिएगा।

(सबका प्रस्थान।)

दूसरा दृश्य ।

स्थान—शतानंदके घरके सामने–मिथिलापुरीकी सड़क ।

समय—सन्ध्याकाल । बादल घिरे हुए हैं ।

[अहल्या अकेली खड़ी है ।]

अह०—यही वह मिथिलापुरी है । वे ही ऊँची महलोंकी चोटियाँ हैं, वही सड़क है, वैसे ही चींटियोंके दलकी तरह अविराम उद्यम और उत्साहके साथ आदमियोंकी भीड़ चल रही है । जाऊँ, उस देवदारुके पेड़के पास बैठ जाऊँ । पैर फट गये हैं–रुधिर बह रहा है । आँखोंसे आगकी चिनगारियाँ निकल रही हैं । अहो विधाता ! (बैठ जाती है) वे कौन लोग कोलाहल करते आ रहे हैं ?–पुरवासी लोग हैं ।

[कई पुरवासियोंका प्रवेश ।]

१ पुर०—ना, यह झूठ बात है !

२ पुर०—स्वयं ऋषि शतानंदने यह ख़बर मुझे दी है ।

३ पुर०—कौन ऋषि शतानंद ?

४ पुर०—महर्षि गौतमके पुत्र ।

१ पुर०—कब ख़बर दी थी ?

२ पुर०—कल सबेरे ।

३ पुर०—महर्षि विश्वामित्र आते हैं ?

२ पुर०—हाँ, वही आते हैं ।

३ पुर०—उनके साथ दशरथके दोनों पुत्र भी हैं ?

१ पुर०—सचमुच आ रहे हैं ?

२ पुर०—सचमुच आ रहे हैं !

३ पुर०—यह शुभ समाचार है !.!

१ पुर०—अत्यन्त शुभ है ! ! ! चलो, राजमहलमें और और सब जगह यह ख़बर सुनावें । (पुरवासियोंका प्रस्थान)

अह०—(उठकर) यह क्या सच है ? या मैं सपना देख रही हूँ ? शतानंद जीवित है !—जीवित हैं ! परमेश्वर ! मैं प्रार्थना करती हूँ—यह बात सच निकले !

[और कुछ पुरवासियोंका प्रवेश ।]

१ पुर०—पुरुषका धर्म ? उसका प्रमाण इन्द्र हैं !

२ पुर०—नारीका सतीत्व ? उसका प्रमाण अहल्या है !

३ पुर०—अभागे गौतम !

४ पुर०—दुर्मति अहल्या—तुझे धिक्कार है !

३ पुर०—भाई—पापिन अहल्याका नाम मत लो ।

२ पुर०—वह महापापिन है !

४ पुर०—वह पिशाची है !

३ पुर०—वह पतिको धोखा देकर परपुरुषगामिनी है ।

अहल्या—(आगे बढ़कर) पुरवासियो, तुम कौन हो जो इस तरह अहल्याकी निंदा कर रहे हो ?—इस तरह एक जबानमें सौ सौ गालियाँ दे रहे हो ?

३ पुर०—अरे यह कौन है जी ?

२ पुर०—वही तो ! कोई भूतनी है क्या ?

१ पुर०—नहीं जी । इसके तो कपड़े फटे हैं, बाल पके हैं, झुर्रियाँ

पड़ी हैं। यह तो कोई दुखिया अनाथ जान पड़ती है।—तुम कौन हो मैया ?

३ पुर०—बोल, तू कौन है ?

अह०—तुम लोग ऐसी अश्रद्धाके साथ सड़कपर खड़े जिसका नाम ले रहे हो—वही हूँ मैं !—पुरवासियो मैं ही वह अहल्या हूँ।

२ पुर०—यह क्या कहती है जी ?

३ पुर०—सच ? तू ही अहल्या है ?

४ पुर०—बेशक यह अहल्या ही है।—मारो मारो।

१ पुर०—असहाय स्त्री है। छोड़ दो—जाने दो।

३ पुर०—असती है यह—

२ पुर०—बदचलन अहल्या यही है—

४ पुर०—मारो। यह पापिन है।

अह०—मैं पापिन नहीं हूँ। बदचलन नहीं हूँ। पहले मेरा हाल सुनो।

२ पुर०—कुछ नहीं—मारो।

३ पुर०—मारो मारो।　　　(मारता है)

[शतानंदका प्रवेश।]

शता०—क्या करते हो पुरवासियो ! दुर्बल नारीपर यह कैसा अत्याचार है !

२ पुर०—यह बदचलन व्यभिचारिणी है।

शता०—क्यों ?—इस स्त्रीने क्या किया है ? (अहल्यासे) मैया तुम्हारा क्या नाम है ?

अह०—मेरा नाम अहल्या है।

शता०—अहल्या !—तपस्विनी ?—गौतमकी स्त्री ?—

अह०—सच है। गौतमकी स्त्री।

शता०—पुरवासियो, तुम अपने अपने घर जाओ। मैं इस तपस्विनीकी शास्त्र-विधानके अनुसार व्यवस्था करूँगा।

३ पुर०—सूलीपर चढ़ा देना होगा।

४ पुर०—नहीं महाशय! सिर मुड़ाकर नगरके बाहर निकाल दो।

शता०—जो कर्तव्य होगा वह मैं करूँगा। ब्राह्मणीको दण्ड देनेका अधिकार ब्राह्मणहीको होता है। जाओ।

(पुरवासियोंका प्रस्थान।)

शता०—तुम्हारा नाम अहल्या है ? तुम तापसी, इस मिथिलानगरीमें क्या चाहती हो ?—क्यों आई हो ?

अह०—पुत्र शतानंदको देखना चाहती हूँ।

शता०—पुत्र शतानंदको ? तुम्हारा क्या प्रयोजन है ?

अह०—तुम कौन हो युवक ? तुम्हारा यह मुखमंडल—यह सुंदर गोरा लंबा डील परिचित सा जान पड़ता है। तुम्हारा कंठस्वर यद्यपि इस समय विशुष्क, रुद्ध और गद्गद है—तो भी जैसे परिचित सा है। जान पड़ता है—जान पड़ता है—तुम कौन हो युवक ?—तुम—तुम क्या—

शता०—हाँ मैं शतानन्द हूँ।

अह०—तुम ? तुम ? (आगे बढ़ती है)

शता०—(पीछे हटकर) क्या कहना चाहती हो ?

अह०—क्या कहना चाहती हूँ ?—बेटा—

(छातीसे लगाना चाहती है)

शता०—ठहरो नारी ! इस उच्छ्वासकी ज़रूरत नहीं है । तुम पुत्रको पुत्र कह कर पुकारनेका अधिकार बहुत दिनोंसे गँवा चुकी हो ।—शतानंदको नहीं पाओगी ।—जाओ, लौट जाओ—स्वर्गमें, ब्रह्मलोकमें, वैकुण्ठमें, कैलासमें—मनुष्यलोकमें, या नरकमें, चाहे जहाँ जाओ—शतानंदको नहीं पाओगी ।—नारी, क्या तुम भूखी हो ? इस राहसे उस देवालयको चली जाओ । वहाँ आश्रय, भोजन और पीनेको पानी पाओगी ।—पानीकी घटा ज़ोरसे उठी है । अन्धकार घना होता जाता है ।—चली जाओ ।

(घरके भीतर जाकर किवाड़े बंद कर लेता है ।)

अह०—पुत्र ! तुम्हारे हृदयमें असीम करुणा है !—अहो; पृथ्वी, तू फटकर सौ टुकड़े क्यों नहीं हो गई ?—परमेश्वर, यह तुम्हारा कैसा टेढ़ा नियम है ? सच है, मैं कलंकिनी हूँ । लेकिन किसके दोषसे ? किसने इस स्वर्णलताको नीरस पाषाणके स्तूप पर रोपा ? किसने प्रलोभन दिखाकर असहाय दुर्बल हृदयवाली रमणीको बहकाया ? किसने, उसे, संभोगके बाद, तीव्र मदिरा पीनेके उपरान्त ख़ाली बर्तनकी तरह फेंक दिया ? क्या वह पुरुष निर्मम क्रूर नहीं है ? तो भी समाजके विचारमें अकेली मैं ही दोषी हूँ ?—आँधी, वेगसे चल ! जलधारा, प्रलयकालकी तरह बरस कर धरतीको डबो दे ! वज्र, दारुण हुंकारके साथ गरज ! कालरात्रि, दसों दिशाओंको ढक ले ! जैसे पुरुष क्रूर और ममताहीन होते हैं वैसा और कोई नहीं ।—आँधी, ज़ोरसे चल ! इस अराजक राज्यको धूलमें मिला दे ! पाषाणी अहल्या खड़ी खड़ी भैरव उल्लासके साथ उसे देखे !

(उन्मादकी अवस्थामें प्रस्थान ।)

तीसरा दृश्य।

स्थान—कैलासपर्वत।

समय—प्रभात।

[गौतम और चिरंजीव खड़े हैं।]

योगी लोग—(दूरपर गाते हैं—)

प्रतिमा गढ़ क्या पूजें तुमको, सब जग मूर्ति तुम्हारी है।
सबमें समारहीं तुम मैया, यह धारणा हमारी है॥
मंदिर क्या हमलोग तुम्हारा बना सकें, साधारण जीव।
नीलाकाश दिगन्तवितत यह भवन तुम्हारा भारी है॥
रवि, शशि, तारा, सागर, झरने, वन, गिरि, कुंज, वसंतपवन।
वृक्ष, लता, फल, फूलमधुरिमा, प्रतिमा न्यारी न्यारी हैं॥

गौतम—कैसा महान् दृश्य है!—दूरपर निश्चल नीरव शुभ्र तुषारका स्तूप सा लगा है; ऊपर असीम नील आकाशका पसार है; नीचे निश्चल कठिन धुएँके रंगके पर्वतकी तहें हैं—दिगन्तविस्तृत दृढ़ पत्थरकी लहरें सी हैं। यह दृश्य—कैसा महान्, कैसा निस्तब्ध, कैसा उदार, कैसा सुंदर और गंभीर है!

योगी—(फिर गाते हैं—)

सतियोंका सुपवित्र प्रणयमधु, शिशुमुसकान, जननि-चुंबन।
भक्ति साधुजनकी, मति, प्रतिभा, व्यक्ति, शक्ति जो सारी है॥
प्रीति प्रतीति परस्पर जो कुछ दया और करुणाका भाव।
सब माधुरी तुम्हारी जननी, महिमा महा तुम्हारी है।
जिधर देखिए, निखिल भूमिमें, तुम्हीं विराजो धर शतरूप।
शीत, वसन्त, रात, दिन, सबमें वैभवगरिमा न्यारी है॥

गौतम—ऐसे सुनसान सन्नाटेवाले अत्यन्त रम्य गंभीर निर्जन स्थानमें प्रकृतिके साथ मानव प्रकृतिकी संधि होती है—हृदय हलका हो जाता है—सब झगड़े मिट जाते हैं। जीवन सार्थक होता है, क्षोभ और संताप दूर हो जाता है, मृत्युका भय जाता रहता है।

योगी—(फिर गाते हैं—)

> तो भी मिट्टीकी प्रतिमा गढ़ तुम्हें पूजना चाहें हम।
> हे ईश्वरी, जगज्जननी, यह भावासक्ति हमारी है॥
> हृदय गभीर अमर कविका भी, भाषासीमामें आबद्ध—
> कर न सके गुण-रूप तुम्हारे; भाषा हिम्मत हारी है॥
> हम अबोध खोजते फिरें मा, देख न पाते, तुम तो आप—
> निकट हमारे विराजती हो! मायाकी बलिहारी है॥
> हाथ बढ़ाये, द्वार खड़े हम, करुणामयी, जगज्जननी—
> तुम्हें पुकारें, दया करो मा! महिमा अगम तुम्हारी है॥

गौतम—अब दुःख नहीं है, अब चिन्ता नहीं है, अब लालसा नहीं है। ईर्षा नहीं है, द्वेष नहीं है। मैंने पिताकी आँखोंके नीचे, माताकी गोदमें, अनन्त विश्राम पा लिया है। आज इस ऊँचे पर्वतके शिखरपर बैठकर पैरोंके नीचे आँख उठाकर देखता हूँ—अनन्त विस्मयके साथ पृथ्वीके झगड़े, कोलाहल, क्षुद्र लोभ और घृणित हिंसा देखता हूँ।—चिरंजीव! क्या सोच रहे हो?

चिरं०—सोचता यही हूँ प्रभू कि दुर्बोध संस्कृत भाषाके विज्ञानमें आपकी बड़ी गति है। जो सरल सहज बात है, उसे जटिल बनानेमें आपकी विचित्र क्षमता है—अत्यन्त अद्भुत शक्ति है।

[इन्द्रका प्रवेश ।]

गौतम—यह क्या, तुम यहाँ क्यों आये ? आश्रमसे इतनी दूर चले आये ?

इन्द्र—परीक्षा करके देखा तो शक्ति आगई जान पड़ी । योगिवर, आज मैं घरको लौट जाना चाहता हूँ ।

गौतम—और दो दिन ठहर जाओ । और भी थोड़ा बल आ जाने दो ।

इन्द्र—यथेष्ट बल आगया है । तुम्हारे आग्रहसे, तुम्हारे रात रातभर जागकर सेवा करनेसे, मैं इस समय अच्छी तरह आरोग्य हो गया हूँ । अब मैं क्या पूछ सकता हूँ कि तुम कौन हो ?

चिरं०—क्यों, यह पूछकर तुम क्या करोगे ?

इन्द्र—(गौतमसे) तुमने मेरी बहुत सेवा की है । मैं उसका पुरस्कार तुमको देना चाहता हूँ ।

गौतम—मैं एक संन्यासी मनुष्य हूँ । मुझे किसी बातकी कमी नहीं है

इन्द्र—तुम माँगनेमें कुंठित होते हो ? मनुष्य, मैं एक धनी व्यक्ति हूँ । तुम जो जो चाहो, सो दे सकता हूँ ।

गौतम—मुझे कुछ न चाहिए ।

इन्द्र—कुछ न चाहिए ? सच ?—तुम्हारा नाम क्या है ?

गौतम—मेरा नाम गौतम है ।

इन्द्र—क्या नाम है ?

गौतम—गौतम ।

इन्द्र—क्या नाम बताया ?

गौतम—गौतम ।

इन्द्र—गौतम ? तुम्हारा घर कहाँ है ?

गौतम—मिथिलामें ।

इन्द्र—जिन गौतमकी स्त्रीका नाम अहल्या है, आप क्या वही गौतम हैं ?

चिरं०—हाँ, यह वही गौतम हैं । इस बारेमें क्या आपको कुछ कहना है ?

इन्द्र—आप महर्षि गौतम हैं ?

चिरं०—हाँजी हाँ—तुम तो समझकर भी जैसे समझना नहीं चाहते ।

इन्द्र—महर्षि, जानते हो—मैं कौन हूँ ?

गौतम—जानता हूँ—तुम देवराज इंद्र हो ।

चिरं०—और अहल्या देवीके उपपति हो ।

इन्द्र—ऐं—ऐं—असंभव है । तुमने किससे सुना ?

गौतम—तुमसे ही ।

इन्द्र—कब ?

गौतम—ज्वरके प्रलापमें ।

चिरं०—और मैंने इतने दिनोंतक तुम्हें मार नहीं डाला, उसका कारण यही है कि इन महर्षिने मुझे ऐसा करने नहीं दिया । लेकिन अनेक बार पछता चुका हूँ कि वनमें तुमको अचेत देखकर सेवाके लिए कंधे-पर लाद कर आश्रममें मुझे लाना पड़ा !

इन्द्र—(दमभर सोचनेके बाद घुटने टेककर) महर्षि ! मैंने आपका जो अपराध किया है वह यद्यपि क्षमा नहीं किया जा सकता, तो भी आपसे क्या मैं क्षमाकी भिक्षा माँग सकता हूँ ?

चिरं०—सो अब नहीं हो सकता ! यह जान बच गई उसे ही अपनी स्त्रीके सोहागका सतका समझो ।

गौतम—चिरंजीव ! चुप रहो ।—इन्द्र तुमसे मुझे कुछ द्वेष नहीं है ।

चिरं०—जाओ, बहुत कुछ मिल गया । अब भाग जाओ ।

गौतम—जाओ देवराज, विश्वपति परमेश्वरसे क्षमाकी भिक्षा माँगो । वह हमारे तुम्हारे दोनोंके स्वामी हैं—उनके निकट छोटे बड़े सब समान हैं ।—क्षमा ? मैं तुमको हृदयसे क्षमा कर चुका हूँ । देवराज ! मैं दरिद्र ब्राह्मण हूँ—तुमको और क्या दूँगा ? आशीर्वाद करता हूँ—सुस्थ होओ—सुखी होओ ।

(इन्द्रका प्रस्थान ।)

चिरं०—प्रभू ! आपने तो एकदम अवाक् कर दिया !

गौतम—क्यों चिरंजीव ?

चिरं०—ऐसे पाजी पापी शत्रुको आशीर्वाद ? यदि मुझसे क्षमाकी प्रार्थना करता तो मैं उसकी गर्दन पकड़कर जूते मारकर निकाल देता ।

गौतम—सुनो चिरंजीव ! शत्रुको लांछित करना—उसका अपमान करना धर्म नहीं है ।

चिरं०—ना—धर्म है शत्रुको पैर धोकर मिठाई खिलाना !

गौतम—प्रतिहिंसा पिशाच शत्रुका दमन कर सकती है, विनाश कर सकती है, उसे भस्म कर सकती है । लेकिन क्षमा वह चीज़ है, जो शत्रुको मित्र बना देती है, निरीह बना देती है, देवता बना देती है । पीड़ा पहुँचाना नरकका धर्म है, प्रतिहिंसा पृथ्वीका धर्म है और क्षमा स्वर्गका धर्म है ।

[एक राजदूतका प्रवेश ।]

दूत—(गौतमसे) आप ही क्या महर्षि गौतम हैं ?

चिरं०—हाँ, यही गौतम हैं। तुम भैया किस आकाशसे उतर आये?

दूत—(साष्टांग प्रणाम करके) राजर्षि जनकने आपको यह पत्र भेजा है। (पत्र देता है)

गौतम—राजर्षि जनकने! देखूँ! (पत्र पढ़कर) चिरंजीव, बड़ी शुभ खबर है! बड़ी शुभ ख़बर है!

चिरं०—क्या ख़बर है?

गौतम—राजपुत्री सीताका विवाह है। राजर्षिने निमंत्रणपत्र भेजा है। तुम कल तड़के चलनेके लिए तैयार हो जाओ।—दूत! तुम थके हुए हो। आश्रममें चल कर मुझको धन्य करो।

(सबका प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान—गौतमका तपोवन।

समय—सन्ध्याकाल।

[विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण।]

राम—यही क्या वह पुण्य आश्रम है?

विश्वा०—यही गौतमका पुण्य आश्रम है। आज यह परित्यक्त पड़ा है। इधर उधर टूटा फूटा हुआ है। घास-फूसने उग कर इसे बीहड़ बना दिया है। ऋषि तो सुदूर कैलास पर्वतपर चले गये हैं। असीम वैराग्यके कारण गृहस्थाश्रम और संसारसे उन्होंने नाता तोड़ लिया है। उनकी प्रेयसी अहल्या प्रलोभनमें पड़कर पतित होकर, लापता हो गई है।

लक्ष्मण—प्रभू, यह तपोवन कैसा सुन्दर, निर्जन, नीरव, गंभीर, घनी छायासे परिपूर्ण और रमणीय है !

विश्वा०—जिस दिन महर्षि गौतम और तपस्विनी अहल्या—दोनों अविच्छिन्न सुखमें मग्न होकर इस वनग्राममें रहते और तपस्या करते थे, उस दिन यह स्थान इससे भी अधिक रम्य था ।

लक्ष्मण—अहल्याकी कथा तो अत्यन्त करुणाजनक है ।

विश्वा०—वह नीरव गंभीर शान्ति—स्वच्छ समुद्रकी तरह, मीठे झर-नेकी तरह, मनोहर शान्ति—आज भी याद आरही है । वह पवित्र जोड़ी—नील आकाशके हृदयमें पूर्णिमाकी चाँदनीके समान नयनसुखद वे दोनों मूर्तियाँ—आज भी आँखोंके आगे जैसे नाच रही हैं। आज भी वह संमिलित कंठसे निकला हुआ गीत—मृदंगके साथ वीणाके स्वरकी तरह—याद आरहा है ।

(नेपथ्यमें यंत्रणाका शब्द होता है ।)

राम और लक्ष्मण—यह कैसा शब्द है ?

विश्वा०—सच तो है । यह तो जैसे किसी रमणीके कंठका स्वर है । चलो, चलकर देखें ।

लक्ष्मण—वृक्षकी आड़में वह कौन रमणी है ? इसका मुख तो बिल्कुल मुर्देका ऐसा हो रहा है !

विश्वा०—कहाँ ?

लक्ष्मण—वह पास ही तो है ।

विश्वा०—ठीक तो है । यह नारी कौन है ? यह क्या ! हरे हरे ! यह क्या वही अहल्या है ?

अह०—(आगे बढ़कर) हाँ, मैं अहल्या हूँ। तुम कौन हो पथिक !

विश्वा०—अहल्या ! तुम यहाँ हो ?

अह०—हाँ, मैं यहाँ हूँ। तुम कौन हो, जो परिचित स्वरसे अहल्याका नाम लेकर पुकार रहे हो ?

विश्वा०—पहचान नहीं पातीं ? मैं विश्वामित्र हूँ।

अह०—तुम विश्वामित्र हो ?—बेशक—पहचान गई। किस प्रयोजनसे आये हो ?

विश्वा०—मैं अतिथि हूँ।

अह०—अतिथि हो ? किसके ! गौतम यहाँ नहीं हैं; अकेली मैं ही हूँ। लौट जाओ—लौट जाओ। वह भी यों ही आया था—अपनेको अतिथि बताता था। ऋषि ! जाओ, लौट जाओ !

विश्वा०—यह क्या ! तुम्हें इस तरहका तो कभी नहीं देखा अहल्या ! वह सौम्य और लज्जासे लाल हो रहा मुखमण्डल कहाँ है ? वह मधुर हास्यकी रेखा कहाँ है ?

अह०—वह कुछ नहीं है—कुछ नहीं है; सब गया। वह धूर्त सब रस पीकर चला गया। जाओ ऋषि, जाओ। यहाँ इस निर्जन स्थानमें इस दूर वनग्राममें मुझे हैरान करने—खिझाने—क्यों आये हो ? मैं किसीके सुखकी राहमें कंटक बनकर नहीं रहती। एक कौड़ी भी किसीकी नहीं चाहती !—जाओ।—महर्षि ! एकदिन तुम्हारे ऊपर मुझे भक्ति थी। मगर आज रत्तीभर श्रद्धा नहीं है।

विश्वा०—क्यों तपस्विनी !—मेरा क्या दोष है ?

अह०—दोष ?—जानते नहीं हो क्या कि क्या दोष है ? बड़ा भारी

दोष है। तुम कपटी मर्द हो!—प्रभू! यही एक महा सत्य मैंने जगत्में आकर जाना है। मर्दोंकी जाति लंपट होती है। तुम ऋषि अवश्य हो, तो भी तुमपर विश्वास नहीं है।—तुम मर्द तो हो। शायद तुम भी मेरे रूपकी लालसासे आये हो? अब मैं नहीं बहक सकती।—वह झूठ, वह धोखेबाज़ी, वह मृदु हँसी, वह एकाग्र चितवन, वह गर्दन टेढ़ी करना—सब समझती हूँ, सब जानती हूँ। मुनिवर, तुम्हारी यह चेष्टा वृथा है!—घर लौट जाओ।

विश्वा०—अहल्या! तुम्हारा हाल मैं जानता हूँ। देवि, तुमको धोखा दिया गया है, यह भी जानता हूँ। लेकिन यह नहीं जानता था कि तुम त्यागी हुई हो। पर हे अभागिन अहल्या, मैं आज इस पुण्य आश्रममें तुम्हें धोखा देने या छलने नहीं आया हूँ।

अहल्या—क्या विश्वास है? तुम मर्द तो हो।—मर्दकी जाति सब कर सकती है। सोती हुई पत्नीके गले पर छुरी फेरना, पशुविक्रमके साथ नम्र नवोढ़ाके पातिव्रत्यको कलंकित करना, बालिकाके खिले हुए प्रेम-पुष्पको लोकाचारके पैरोंपर फेंक देना, स्नेह-भक्तिकी बलि देना, भूखेके मुखमें राख डालना, प्यासेको ज़हर पिलाना, दयाका विनाश करना, विश्वासकी हत्या करना—मर्दके बाएँ हाथका खेल है! मर्दकी जाति सब कर सकती है।

राम—भोली भाली अभागिन नारी! तुमने यहाँ तक मनुष्यका विश्वास खो दिया है? तापसी, तुम क्या यहाँतक पतित हो गई हो? या हार्दिक यंत्रणाके कारण तुम ज्ञान गँवा बैठी हो?—मुर्ख आदमी जब विवेकसे शून्य हो जाता है, जब वह कर्तव्यसे स्खलित होकर गढ़ेमें

गिरता है, तब और—को दोष देता है !—देवि, इस संसारमें मनुष्य-जन्म फूलोंका खेल नहीं है !—स्त्रीको सदा ब्रह्माण्डके आक्रमणसे सतीत्व और जीवनकी रक्षा करनी पड़ती है । तुम्हें सैकड़ों प्रलोभन बलपूर्वक अपनी ओर खींचेंगे ही । तुम्हें खुद अपनेको सँभालना पड़ेगा । बाधा और विपत्ति आकर सदा जीवनके मार्गको दुर्गम बनावेंगी; तुम्हें अपने बलसे उन्हें लाँघना पड़ेगा । जीवन एक प्रकारका संग्राम है । अगर जगत् निष्ठुर है तो तुम भी कठिन बनो ।

अह०—हाय ! शक्ति नहीं है ।

राम—शक्ति नहीं है ? यह कैसी मूढ़ता है ! शक्ति है—इच्छा नहीं है । विवेक है—उद्यम नहीं है । प्रलोभनके फंदेमें खुद पैर बढ़ा देती हो, पीछे जब उस शृंखलामें बँध जाती हो, तब रुष्ट होती हो । पातकसे मेल करती हो, पीछे जब स्वर्गका द्वार रुँधा हुआ देखती हो, तब क्रुद्ध होती हो । अपने हाथसे विषका वृक्ष बोती हो, पीछे जब अमृत-फल नहीं फलता, तब विधाताके साथ झगड़ा करती हो ।

अह०—सब सच है ।—लेकिन सूखी मरुभूमिमें क्या कभी झरना बहता है ? पत्थरमें कहीं फूल पैदा होता है ? सागरके भीतर कहीं सूर्यकी किरणें प्रवेश करती हैं ? मेरे जीवनका आरंभ भारी प्रमादसे हुआ था । हाय ! विधाताने खँडहरमें क्यों चाँदनी डाली ? पपीहेको अंधकारमें क्यों रक्खा ? निर्जन वनमें फूलोंकी सुगंध क्यों बिथराई ?

राम—हाय मूढ़नारी ! इतने दिनोंतक शायद तुमने प्रेमिकके सुंदर मुखको, घुँघराले बालोंको, सरल नासिकाको, दोनों पद्मदलसे अधिक

अरुण और कोमल कपोलोंको, दोनों लालसासे शिथिल दृष्टिवाली आँखोंको, पूर्ण पीन सरस अधरोंको पहचाना है ?–हा मूढ़ सुंदरी ! तुमने प्रेमिकके गंभीर हृदयको, प्रेमकी गूढ़ व्यथाको, संयत आग्रहको नहीं पहचाना ? गौतम ऋषिके वही हृदय था ! उसे तुमने लातोंसे ठेल दिया ! तापसी, तुमने अमूल्य रत्न-हारको कण्ठसे उतार कर गहरे सागरके जलमें फेक दिया !

अह०–(दमभर सोचकर) दार्शनिक बालक ! तुम्हारे सौम्य पवित्र मुखमण्डलमें नवीन वसन्तका विकास है। तुम्हारी दोनों नम्र आँखें पृथ्वीकी ओर लगी हुई हैं। तुम्हारे कंठसे निकले अनुकंपापूर्ण शब्द वीणाकी झनकारके समान गूँज रहे हैं–जैसे वर्षाके श्याम मेघसे स्निग्ध जलधारा निकल रही हो। बताओ, तुम सुंदर कुमार कौन हो ?

राम–मेरा नाम राम है। अयोध्याके स्वामी महाराज दशरथका मैं पुत्र हूँ।–यह लक्ष्मण मेरे छोटे भाई हैं।

अह०–तुम राजकुमार हो ! तुम्हारे अक्षय खजानेमें बहुत सा सुवर्ण और रत्न होंगे, लेकिन ऐसा रत्न नहीं होगा–जैसे तुम्हारे ये उपदेशके वचन बहुमूल्य हैं। तुम भगवान् नारायण हो; अपने चरणोंकी रज मुझे दो। क्षमा करो प्रभू ! (पैर पकड़ती है।)

राम–मैं क्या क्षमा करूँगा ? क्षमा उनसे माँगो, जिनके अनन्त प्रेम और अनन्त विश्वासके बदलेमें तुमने अपने नीच हृदयकी कठिनता दी है–जिनके कोमल हृदयमें अपने व्यभिचारका वज्र हनकर मारा है। जाओ भैया, उनसे क्षमा माँगो। उसके बाद विधातासे क्षमा माँगो,

जिनके मंगलमय नियमको, असीम गर्वके मारे, नई जवानीके जोशमें आकर, अवज्ञाके साथ, तुमने लात मारी है।

अहल्या—वह क्षमा करेंगे ?

राम—यह तो मैं नहीं जानता तपस्विनी ! तथापि मेरी यही सलाह है कि मौन प्रार्थनाके साथ उनसे क्षमा माँगो ।

अह०—वही होगा ।—प्रभू ! तुमने आज अहल्याका उद्धार किया । चलो, मेरे आश्रममें पधारो । केशव, मैं तुम्हारी और तुम्हारे छोटे भाईकी पूजा और अतिथिसत्कार करूँगी ! (विश्वामित्रसे) महर्षि ! मेरी कुटीमें चलो ।　　　　(सबका प्रस्थान ।)

पाँचवाँ अंक।

पहला दृश्य।

स्थान-पहाड़ी मार्ग।

समय-आधी रात।

[चिरंजीव अकेला।]

चिरं०-(स्वगत) खूब धोखा दिया! वह छोकरी क्या मुझे सोने देगी? चारों ओर दरवाजे-खिड़की-झरोखे बंद करके भला कहीं भले आदमीको नींद आसकती है! मिथिलामें जाते जाते राहमें ऐसा जोरसे बुखार चढ़ा कि तोबा! गौतम और माधुरी दोनोंने अन्तको जाकर एक धर्मशालामें आश्रय लिया। खूब छके मगर। (हँसता है।) धर्मशाला है!-कहाँ है धर्मशाला?-वह तो ताड़ीकी दूकान थी! खूब भाग आया। माधुरी कहती है, बाहर न जाओ; ज्वरका ज़ोर बढ़ जायगा। आः!-ऐसी ठंडी हवा है!-इस हवासे बुखार बढ़े तो बढ़े!-जान पड़ता है, जैसे मैं एकदिन इसी तरह माधुरीको धक्का देकर गढ़ेमें गिरा कर भाग गया था। मगर माधुरीको उसकी याद नहीं है। क्या मैं यों ही कहता हूँ कि औरतोंकी जाति एकदम बेवकूफ़ होती है! खाना नहीं, सोना नहीं, विश्राम नहीं—दिनरात मेरी ही सेवा किया करती है!-सोकर उठने पर देखता हूँ, मेरे सिरहाने बैठी जाग रही है! औरत इतना कर सकती है बाबा!-लेकिन अबकी खूब भाग आया हूँ। जैसे देखा कि माधुरी ऊँघ रही है, वैसे ही उठकर धीरे धीरे पैर रखते हुए

निकल कर बाहर आया, और बाहर आते ही एकदम सिर पर पैर रखकर सरपट भागा !—खूब ठंडी हवा चल रही है—सर्दी सी लग रही है ! यहाँपर ज़रा पेट भरकर सो लेना चाहिए ।—वह लो, अब और कौन आ रहा है ?—यह तो माधुरी ही देख पड़ती है ! यह तो बुरा हुआ—इसने आकर सब मिट्टी कर दिया ! सच है, जहाँ बाघका डर, वहीं शामका होना !

[माधुरीका प्रवेश ।]

माधुरी—प्रभू, यहाँ आ गये ?

चिरं०—(खीझकर) यहाँ नहीं तो क्या वहाँ !

माधुरी—चलो चलो—डेरे पर चलो ।

चिरं—ना, नहीं जाऊँगा ।

माधुरी—ज्वरका वेग बढ़ जायगा ।

चिरं०—तो उसमें तेरा क्या ? मैं यहाँ खड़ा होकर बैठे बैठे मरूँगा ।—उसमें तेरा क्या ?

माधुरी—छिः प्रभू ! चलो ।

चिरं०—देख, कहता हूँ—दिक न कर ।

माधुरी—तुम घर चलो ।

चिरं०—फिर हैरान करने लगी ?—अब जो दिक करेगी तो—! आः !—(लेट जाता है ।)

माधुरी—छिः ! उठो—(पकड़कर उठाना चाहती है ।)

चिरं०—ओः ! जैसे सर्दी लगरही है—(काँपता है) अरे रे, यह क्या हुआ ?—

माधुरी—(घबराकर) क्या हुआ ?

चिरं०—मुझे बड़ी हँसी आरही है। (हँसता है)। नारे ना, हँसी तो नहीं आ रही है। फिर क्या आ रही है ?

माधुरी—क्या आ रही है ?

चिरं०—हाँ ठीक। नींद आ रही है। सुन, बैठ जा, तेरी गोदमें सिर रखकर मैं सोता हूँ—और तू मेरे सिरपर कुहू-कुहू शब्द कर।

माधुरी—वही करूँगी। तुम पहले घर चलो। उठो।

चिरं०—देख माधुरी, मैं एक बड़े भारी सन्देहमें पड़ गया हूँ।

माधुरी—क्या सन्देह ?

चिरं०—सन्देह यही है कि ईश्वरने मर्दको औरत, और औरतको मर्द बनाकर क्यों नहीं पैदा किया ? अगर मर्दको औरत बनाकर और औरतको मर्द बनाकर पैदा करते, तो—आः, कैसा मज़ा होता ! क्यों ?

माधुरी—हाँ, तो अच्छा होता। अब घर चलो।

चिरं०—ना, तू सोने नहीं देगी। तनिक आराम करने आया तो कानोंके पास आकर भिनभिन करने लगी—"चलो घर चलो।" इतनी रात तक तेरी आँखोंमें नींद नहीं है, तो क्या मुझे भी सोने न देगी ? चल। (जाना चाहता है।)

माधुरी—मेरे कंधेपर बोझ देकर चलो।

चिरं०—(जाते जाते) दयामय भगवान् ! अच्छा पहरा तैनात कर दिया है ! चल। (दोनोंका प्रस्थान।)

हे महापुरुष ! तुम सच्चे तपस्वी हो । तुम विशुद्ध, उदार, निष्काम, निःस्वार्थ और चिरस्मरणीय हो ।—लो वह शची देवी आ रही हैं ।

(उठकर खड़ा होता है ।)

[शचीका प्रवेश ।]

शची—(प्रकाशित भवनकी ओर देखकर) इस आधी रातको, उज्ज्वल विलास-गृहमें संगीत चल रहा है, उत्सव हो रहा है । छी-छी, लज्जा नहीं है !—शीतल मंद पवन डोल रहा है । तनिक इस मंदाकिनी तटपर बैठूँ ।

इन्द्र—(आगे बढ़कर) शची !

शची—(चौंककर) कौन—तुम हो !

इन्द्र—हाँ । तुम्हारी प्रतीक्षामें यहाँ आया हूँ ।

शची—इतना अनुग्रह किया ? नाथ दासी कृतार्थ हो गई ! प्रभू, लौट जाने दो । राह छोड़ो । (जाना चाहती है ।)

इन्द्र—शची !

शची—लज्जा नहीं आती ? किस अधिकारसे तुम मेरा नाम लेकर पुकारते हो ?

इन्द्र—सुनो, मैं सच कहता हूँ—

शची—मैं कुछ नहीं सुनना चाहती ।—हाय देवराज ! देवीको छोड़-कर मानवीपर लुभा गये ? अन्तको नहीं मालूम और भी क्या निग्रह भोगना तुमको बदा है ! उर्वशी, मेनका, रंभा आदिके साथ सुधा पीकर मस्त होकर नाचते थे, वह भी मैंने सह लिया था; क्योंकि वे देवजातिकी स्त्रियाँ हैं । अन्तको जिस दिन तुम मानवीके ऊपर रीझ गये, उसी दिन तुम्हारा देवभाव जाता रहा ।

इन्द्र—सच है, अहल्या मानवी है। तो भी इन्द्राणी, अहल्याका रूप अप्सराओंसे भी बढ़कर अद्भुत है। यह मैं सच कह रहा हूँ। उसी प्रलोभनमें मुग्ध होकर मैंने यह अपराध—यह पाप—किया है।

शची—रूप अप्सराओंसे बढ़कर हो, तो भी वह मानवी है। उसके स्पर्शसे तुम कलुषित हो चुके हो। अब पुलोमकन्या इन्द्राणीके शरीरको न छूना। (क्रोधके साथ प्रस्थान

इन्द्र—सदासे विधिविरुद्ध लालसाका यही परिणाम होता आया है। तीव्र क्षणिक संभोग अंतको दीर्घ विषाद और व्याधिका घर ही है। शान्ति जाती रहती है, नींद भी नहीं आती। तुच्छ प्रलोभनमें पड़कर अन्तको पत्नीके आदर-प्रेमसे वंचित होना ही पड़ता है।

[मदन और रतिका प्रवेश।]

इन्द्र—हाय! मदन, तुम इतनी देरमें आये? शची चली गई।

मदन०—मैं क्या करूँ प्रभू, रतिके कारण देर हो गई। इनकी केश-रचनामें—वेशविन्यासमें—पहर भर बीत गया।

रति—स्त्रियाँ सदा इस बातके लिए बदनाम की जाती हैं। लेकिन प्राणेश्वर, यह वेशविन्यास किसके लिए है?

इन्द्र—सुंदरी! यह दांपत्यकलह कबतक चलेगा?

रति—जबतक इस दूर निर्जन बनमें इन्द्र और इन्द्राणीका झगड़ा नहीं निपटेगा।

मदन—इन्द्राणीका मिजाज़ कैसा है?

इन्द्र—वह तो तपे लोहेसे भी बढ़कर गर्म हो रही हैं।

मदन—प्रभू! शयनमंदिरमें ही यह वियोगका नाटक समाप्त होगा। चलो देवराज! सुनो, कोई चिन्ता नहीं है। स्त्रियोंके सदासे ऐसे ही ढंग होते आये हैं। दमभर गरजकर, बरसकर, अन्तको सब शान्त हो जाता है। चलो, विलास-भवनमें चलो।

इन्द्र—अब कुछ अच्छा नहीं लगता। नस नसमें आग सी बह रही है। मस्तक और हृदय हज़ारों शिलाओंके बोझसे दवा हुआ है।

मदन—प्रभू, चिन्ता दूर करो। मैंने क्या पहले आपसे नहीं कह दिया था कि ऐसे प्रेमका सदा ऐसा ही परिणाम होता है? धीरे धीरे पानी थिरायगा। इस समय विलास-भवनमें चलो। चिन्ता नहीं है, शयन-मंदिरमें इस रोगकी दवा दूँगा।

(सब जाकर नाव पर सवार होते हैं।)

मदन और रति—(नावपर गाते हैं—)

बहा दे यह नाव साधकी तू बहावमें, क्यों दहल रहा है?
चढ़ा दे बस पाल और बह चल, गँवार नाहक मचल रहा है॥
अजब तमाशा है, देख चलकर, उमंग जो हो तो फिर हो ऐसी।
उठा है तूफ़ान और आँधी नदीका जल भी उछल रहा है॥
वृथा है सब युक्ति और चिन्ता, पड़ा भी रहने दे दुःख पीछे।
बहेंगे, चिल्लायँगे, हँसेंगे, इसीमें अब जी बहल रहा है॥
अवश्य फिरना ही होगा रूखे कठिन किनारे पै, तू समझ ले।
हिसाब करना ही होगा, लेना औ देना सबसे जो चल रहा है॥
जो नावको डूबना है, डूबेगी, हमको मरना है, तो मरेंगे।
मरेंगे ग़ोतेमें गँदला पानी ज़रासा पीकर जो खल रहा है।

(सबका प्रस्थान।)

तीसरा दृश्य।

स्थान–मिथिलाकी सड़क।

समय–प्रभात।

[अहल्या अकेली।]

अह०–अब क्या वह फिर मुझे प्यार करेंगे? फिर उस मधुर गंभीर स्वरसे स्नेहके साथ मेरा नाम लेकर पुकारेंगे? फिर वह पास आकर उसी तरह स्नेहनम्र दृष्टिसे मेरी ओर ताकेंगे?—नाथ! प्राणेश्वर! क्षमा करो। तुम्हारा इतना प्रेम, इतनी वेदना, इतना आदर, पहले मैं समझ नहीं सकी थी। मैं पाषाणी हूँ! मैं पापिन हूँ! मैं अभागिन हूँ! सिर-आँखोंपर रखनेकी चीज़ मैंने पैरोंसे ठेल दी! (घुटने टेककर) क्षमा करो। प्रभू, मेरे सर्वस्व, मेरे देवता! आज मेरी समझमें आ गया कि त्रिभुवनमें तुम ही मेरा सब कुछ हो, तुम ही मेरा यह लोक हो, तुम ही मेरा परलोक हो! मैं मूर्ख हूँ—इसीसे इतने दिनोंतक समझ नहीं सकी। क्षमा करो। क्षमा करो। क्षमा करो।

[एक पुरवासिनीका प्रवेश।]

१ पुर०–तुम कौन हो बहन, राह छोड़ो। (प्रस्थान।)

(अहल्या फिर हटकर खड़ी होती है।)

[दूसरी पुरवासिनीका प्रवेश।]

२ पुर०–औरतकी अक्लि तो देखो! एकदम बीच राहमें खड़ी है। और तनिक हटकर खड़ी हो। (प्रस्थान।)

(अहल्या हटकर खड़ी होती है।)

[तीसरी पुरवासिनीका प्रवेश ।]

३ पुर०—कौन है री ! खड़े होनेके लिए और कही जगह नहीं मिली ? खोपड़ी पर खड़ी है । हट । (प्रस्थान ।)

(अहल्या और हटकर खड़ी होती है ।)

[चौथी पुरवासिनी प्रवेश करती है । प्रवेश करते समय अहल्याका धक्का लगनेसे गिर पड़ती है ।]

४ पुर०—मर चुड़यल ! आः—मेरे सब बेर गिरा दिये !

(बेर बीनती है ।)

अह०—क्षमा करो बहन । मैं बेर बीने देती हूँ ।

(अहल्या बेर बीन देती है । वह स्त्री बेरोंका झव्वा लेकर जाती है ।)

अह०—अब क्या उन्हें पाऊँगी ? उस तरह हृदयके भीतर उन्हें पाऊँगी ? जिन्हें जागतेमें दिनको गँवा दिया है, उन्हें रातके अँधेरेमें खोज कर कैसे पाऊँगी ?

[कुछ सुसज्जित राजभृत्योंका प्रवेश ।]

१ भृत्य—बेशक बड़ा बल है !

२ भृत्य—हाँ, धनुषको उठाकर ईखकी तरह पटसे तोड़ डाला जी !

३ भृत्य—उस बालकको देखनेसे तो यह नहीं जान पड़ता कि उसके शरीरमें खूब ताक़त होगी ।

२ भृत्य—अन्तको राजकुमारीका ब्याह क्या एक बैरागीके लड़केके साथ होगा जी !

१ भृत्य—चल चल, मुँह सँभाल कर बात कह ।

(भृत्योंका प्रस्थान ।)

अहल्या—वह क्या अब फिर मुझे उसी तरह प्यार करेंगे? मैं व्यभिचारिणी हूँ, मैं अभागिन हूँ, मैं विश्वासघात करनेवाली हूँ, मैं किस साहससे उनके सामने खड़ी होऊँगी? किस साहससे उनसे क्षमा माँगूँगी?

[कई एक पुरोहितोंका प्रवेश।]

१ पुरो०—सो तो होगा ही। मणि-कांचन संयोगकी बात शास्त्रमें लिखी ही है।

२ पुरो०—अरे रहने दो अपना शास्त्र! तुम शास्त्र क्या जानो भट्टजी!

१ पुरो०—मैं शास्त्र नहीं जानता! पुराण, उपपुराण, वेद, वेदांग, दर्शन, मनुस्मृति आदि आदि सब कंठ हैं।

३ पुरो०—अरे इतना चिचियाते क्यो हो!

४ पुरो०—राजा दशरथको लानेके लिए लोग गये हैं?

३ पुरो०—अजी हाँ, गये हैं जी गये हैं। उनके पुत्र रामका ब्याह है, और उन्हें लानेके लिए लोग न जायँगे?

१ पुरो०—गौतमके पास राजाका निमंत्रणपत्र गया था क्या, जो वह आये हैं?

२ पुरो०—हाँ, गया था।

४ पुरो०—राजभवनमें मजेसे चर्व्य, चोष्य, लेह्य, पेय पदार्थोंपर हाथ फेर रहे होंगे।

३ पुरो०—अरे इतना चिचियाते क्यों हो जी?

१ पुरो०—गौतम बहुत ही दुबले हो गये हैं।

४ पुरो०–दुबले न हो जायँगे। इतना बड़ा कलंक लग गया है!

३ पुरो०–मैं कहता हूँ—जरा धीरेसे न चिल्लाओ!

(पुरोहितोंका प्रस्थान।)

अह०–यह क्या सुन रही हूँ? वे आये हैं? आये हैं? मैं क्या करूँ! जाऊँ–उनके पैरोंपर गिरकर क्षमाकी प्रार्थना करूँ। वे प्रेममय हैं, वे दयाके सागर हैं, वे क्षमाकी मूर्ति हैं। क्षमा कर भी सकते हैं। जाऊँ, जाऊँ। (प्रस्थान।)

चौथा दृश्य।

स्थान–जनककी राजसभा।

समय–दोपहरके पहले।

जनक, गौतम, शतानंद, विश्वामित्र।]

गौतम–मैं आज धन्य हो गया। बलिहारी! कैसा पानीभरे बादलके समान सुंदर श्याम शरीर हैं!–राजर्षिजनक! राजकुमारी सुंदरी सीता इनसे अच्छे वरको कभी नहीं दी जा सकती थी। बिजली क्या कभी नव-जलधरके सिवा शोभाको प्राप्त होती है? चंपेकी कली श्याम नव पल्लवके सिवा क्या कभी शोभित हो सकती है?

जनक–बंधुवर! तुम्हारे शुभागमनसे यह विवाहकार्य और भी सुसंपन्न हो गया!

गौतम–प्रिय! मैं बहुत दिनोंसे प्रवासमें था। संसारके प्रति अपने

कर्तव्यको भूलकर मैं दूर निर्जनमें स्वार्थमग्न होकर गंभीर सुखमें लिप्त हो रहा था। मित्रवर, तुम्हारे पत्रने पहुँचकर मेरे हृदयमें फिर अतीत कालकी स्मृतिको जगा दिया!

[माधुरीको घसीटते हुए चिरंजीवका प्रवेश।]

चिरं०—यह लो! यह मायाविनी है—जादू जानती है।

विश्वा०—यह क्या चिरंजीव? राजसभाके बीच अपनी पत्नीका अपमान कर रहे हो?

चिरं०—यह मायाविनी जादू-मंत्र जानती है! मैं सदासे इसका अनादर करता आरहा हूँ; यह उसके बदलेमें मेरी सेवा-पूजा करती है। मैं इसे कटु वचन कहता हूँ; यह मायाविनी हँसती है। मैं निर्दयताके साथ इसे मारता पीटता हूँ; यह चुपचाप सहकर नीरव विलाप करती है। मैं इसे निर्जन वनके मैदानमें रातको कैलाश पर्वतके मार्गमें छोड़कर चला आया; पीछेसे मैं बीमार होकर जब मिथिलाकी राहमें पड़कर सो गया, तब उठने पर देखा—यह पिशाची जागती हुई सिरहाने बैठी मेरी सेवा कर रही है। यह मायाविनी अवश्य मंत्र जानती है। मालूम नहीं, प्रभू, किस मंत्रके बलसे इस मायाविनीने मेरे पाषाणमय हृदयको—मेरी पाशव प्रवृतिको—अपने बाहुपाशमें—अपने स्नेहपाशमें—बाँध रक्खा है। अब मैं मन-वाणी-कायासे इस पिशाचीका दास हो रहा हूँ।—अहो! पुरुषकी यह कैसी दुर्गति है! (बैठकर रोने लगता है।)

जनक—अच्छा जाओ चिरंजीव, मैं इसके लिए दंडकी व्यवस्था

करूँगा। (माधुरीसे) मायाविनी ! तुम आजसे इस पापके कारण रानीकी सखी हुई। अन्तःपुरमें जाओ।—चिरंजीव, जाओ।

(दोनोंका प्रस्थान।)

गौतम—हरि ! दयामय ! तुम धन्य हो ! इतने दिनोंमें माधुरीकी महासाधना सिद्ध हुई।

[राजा दशरथका प्रवेश।]

जनक—(गौतमसे) बन्धुवर ! यह अयोध्याके स्वामी महाराज दशरथ मेरे समधी हैं। (दशरथसे) महाराज ! यह मेरे बंधुवर महर्षि गौतम हैं।

[दशरथ गौतमको प्रणाम करते हैं। गौतम दशरथको आशीर्वाद देते हैं।]

दशरथ—महाराज ! अभी मैंने आपके महलमें आते समय राहमें एक अत्यन्त अद्भुत दृश्य देखा है—एक उन्मादिनी नारी खड़ी थी—

गौतम—उन्मादिनी नारी !

दशरथ—हाँ उन्मादिनी नारी। उसका गोरा शरीर दुबला और रोगी सा हो रहा था। उसके पैरोंतक लंबे केश रूखे और बिखरे हुए थे। उसकी दोनों विशाल आँखोंमें आँसू भरे हुए थे। उसके स्वच्छ सुगठित चौड़े मस्तक पर गहरी दुःखकथाकी कालिमा अंकित थी। वह किन्नरीके समान मधुर कंठसे कैसा वेदनासे भरा, गंभीर, मधुर, उत्कट गीत गा रही थी !—मित्र, उसका स्वर स्वर्गीय था। उस स्वरमें अनन्त वासना, और साथ ही अनन्त असीम स्वर्गीय हताशा भरी थी।—मैंने कभी ऐसी करुणामय मूर्ति नहीं देखी, ऐसा करुण संगीत नहीं सुना।

गौतम–(अर्ध स्वगत) उन्मादिनी थी !

(बाहर गीतका शब्द सुन पड़ता है ।)

दशरथ–वह आ रही है। शायद वह नारी यहीं आरही है।

(अहल्या प्रवेश करके गाती है)

प्रभु मोहिं एक बार फिरि चाहौ ।
ज्यों पहिले चाहत थे दासिहि वह प्रण फेरि निबाहौ ॥
सोई व्यथा हृदयकी स्वामी जागि उठी फिरि हियमें ।
रोवत बीतत रैन दिवस नित, चैन न छिनभर जियमें ॥
एक बार कर पकरि उठावहु, हियसों हियो लगाओ ।
तीखी सेल लगैं हिय लाखन, अब त्यहि शांत बनाओ ॥
मलिन परी धरतीमहँ बंसी खोई नाथ तुम्हारी ।
तबहुँ तुम्हारी है, सादर त्यहि लेहु हाथ महँ झारी ॥
टूटी फूटी हृदय-बाँसुरी, आजु नाथके करमें ।
बाजु बाजुरी वैसे ही प्रिय मधुर मनोहर स्वरमें ॥

गौतम–अभागिन–तेरा यह वेश ! यह दशा !–

अह०–अभागिन हूँ ! सच, मैं अभागिन हूँ ! प्रभू–मैं बड़ी ही अभागिन हूँ, बड़ी ही कलंकिनी हूँ, बड़ी ही पापिन हूँ, बड़ी ही दुष्टा हूँ !

गौतम–हाय प्रियतमे !

अह०–"प्रियतमे !" आज मुझसे यह संभाषण ? यह क्या उपहास है ! या महर्षि, आपने शायद मुझे अभीतक पहचाना नहीं ?

गौतम–पहचाना है प्राणेश्वरी !

अह०–ना, नहीं पहचाना–इसी कारण उस मधुर स्नेहपूर्ण गद्गद स्वरसे मुझे पुकार रहे हो ! इसीसे प्रेमके साथ हाथ फैला रहे हो !

अगर मुझे पहचानते तो घृणाके मारे मेरी ओरसे मुँह फेर लेते—मुझे कर्कश स्वरसे दुतकार देते, अथवा लात मारकर दूर कर देते।

गौतम—अहल्या—

अह०—अहल्या नहीं; पाषाणी हूँ—पाषाणी कहो। मैं परपुरुषगामिनी, पुत्रका गला घोटनेवाली हत्यारिन, पिशाची हूँ। सुनो—मेरी वह कथा सुनो। वह कथा ऐसी है कि उसकी हर पंक्तिमें गहरी कलंककी राशि जमी हुई है—उसके हर अक्षरमें पापपुंज भरा पड़ा है।—पहले मेरा इतिहास सुन लो—

गौतम—मैं उसे सुनना नहीं चाहता, सब जानता हूँ!—मेरी प्रिया—मेरी पत्नी—प्रतारित, प्रलुब्ध, पतित है! तुम्हारा यह शीर्ण शरीर, यह पीला पड़ाहुआ मुख, यह गढ़ोंमें चले गये नेत्रोंके नीचेकी घनी गहरी स्याही ही तुम्हारा इतिहास कह रही है!—

अह०—प्रभू, मैंने कितने ही वर्षोंसे नरककी ज्वाला—ओः! नरककी ज्वाला दिनरात सही है! मैं तीव्र यन्त्रणाके कारण भीतर ही भीतर पाषाणी हो गई हूँ। एक दिन अन्तको सहसा विष्णुकी कृपासे मुझे चैतन्य हुआ। सूखे पत्थरको तोड़कर झरना बह निकला; वज्रपातसे जले हुए पेड़में पत्ते और फूल देख पड़े।—अब और क्या कहूँ!—नाथ—तुम अगर सब जानते हो, तो फिर मैं और क्या कहूँ!—मेरे जीवनसर्वस्व! इतने दिनोंपर मुझे अपना भ्रम मालूम पड़ा है! क्षमा करो।—तुम धर्मकी प्रतिमा हो, पुण्यका रूप हो, दयाके सागर हो, स्वर्गके देवता हो! और मैं पापिन हूँ, मूढ़ हूँ, क्षुद्र हूँ, घृणित हूँ, नरकका कीड़ा हूँ!—देव!

मैंने विश्वासको तोड़ा है; कर्त्तव्यको पैरोंसे ठेला है; प्रेमके पात्रमें विष डाल दिया है!—आज वह भ्रम मेरी समझमें आगया—क्षमा करो नाथ!—

शता०—क्षमा! जो नारी विश्वासका विनाश करके पवित्र प्रणयकी हत्या करती है, वह कभी क्षमाके योग्य नहीं है।—हाय, पिताजी! जो दाम्पत्य प्रेम समाजकी नींव है, सब कर्तव्योंकी जड़ है, उसी दांपत्य प्रेमकी जड़पर जो नारी अपने हाथसे कुठार चलाती है, वह पापिन कभी क्षमाके योग्य नहीं है। पितृदेव! महात्मा भृगुकी व्यवस्थाके अनुसार, कुलटा नारीके लिए, वह चाहे अपनी पत्नी हो—चाहे जननी हो, प्राणदण्ड ही योग्य दंड है।

गौतम—क्रोधको शांत करो प्यारे पुत्र!—मैं दण्ड दूँगा?—हाय! मैं आप गले गले तक पापमें डूबा हुआ हूँ। मैं आप दुर्बल मूढ़मति मनुष्य हूँ। मेरी क्या मजाल है कि दूसरे कर्तव्यभ्रष्ट मूढ़ मनुष्यका विचार करने बैठूँ।—(अहल्यासे) आओ अभागिन नारी! विधाताका सुंदर विधान यही है—प्रियतमे, आओ!—आज मैंने वह पाया, जो पहले कभी नहीं पाया था। आज पहला दिन है कि मैंने तुमको हृदयके भीतर पाया है।—आओ पीड़ित, परित्यक्त, प्राणेश्वरी! आओ, बाणसे घायल मेरे हृदय-पिंजरकी चिड़िया, हृदय-पिंजरमें फिर आओ! (अहल्याको हृदयसे लगा लेते हैं।)

विश्वा०—तुम इतने उच्च हो? इतने पवित्र और महान् हो? इतने क्षमाशील हो? इतने उदार हो?—ब्राह्मण! मैं तुम्हारे आगे सिर झुकात हूँ।—राजर्षि जनक! तुमने बहुत ठीक और सच बात कही थी।

समझ गया, ब्राह्मणत्व पाकर भी मैं यथार्थ ब्राह्मण नहीं हो सका हूँ! जान गया, मैं ब्राह्मणत्वके बहुत नीचे पड़ा हुआ हूँ।—विश्वामित्रको धिक्कार है—वरदानमें मिले हुए ब्राह्मणत्वको धिक्कार है! मेरे तपको धिक्कार है!

जनक—वह चरित्र धन्य है, जिसके स्पर्शके जादूसे वेश्या सती हो जाती है, दस्यु साधु बन जाता है, पापपंकमें पड़ा हुआ पवित्र हो जाता है, कामुक और लंपट जितेन्द्रिय बन जाता है, गर्वसे चूर हुआ मनुष्य सिर झुका लेता है। वह चरित्र परमपूजनीय है, जो पारसपत्थरकी तरह लोहतुल्य काले चरित्रको सुवर्ण बना देता है; पावककी तरह दुर्गंध कूड़ेको भस्म कर देता है; पवित्र जलवाली जाह्नवीकी तरह सब मैल धो देता है।

अहल्या—नाथ! तुम्हारे पुण्यके तेजसे आज मैं अंधी हो रही हूँ। तुम कहाँ हो? कितनी दूर हो? मुझे अपने साथ ले लो।

(सबका प्रस्थान।)

पाँचवाँ दृश्य ।

स्थान—अलौकिक प्रमोद-मण्डप ।

समय—रात ।

[राम सीताकी युगल-मूर्ति ।]

सामने अप्सराएँ नाचती गाती हैं—

प्रेमसमुद्र बहा जाता है, प्रेमतरंग उठें जिसमें ।
कोई गोते खाकर डूबे, कोई बहता है इसमें ॥
प्रेम किसीको अविच्छिन्न सुख देता, हर्ष बढ़ाता है ।
और किसीके हृदयदाहका दृढ़ कारण बन जाता है ॥
रहे प्रेममें लिप्सा ईर्षा, और प्रणयपरिणय भी है ।
विष है अगर किसीको, तो फिर कहीं सुधा मधुमय भी है ॥
प्रेमाकर्षणसे हरिको भी जीव भूमिपर लाता है ।
निराकारको प्रेम प्रबल ही यों साकार बनाता है ॥
भोलानाथ सदाशिव देखो इसी प्रेममें मग्न रहें ।
पागल ऐसे परम उदासी हो मसानमें नग्न रहें ॥
कोई प्रेमपंथमें पड़कर होता है सबका त्यागी ।
कोई वर उपभोग चाहता, बन विषयोंका अनुरागी ॥
प्रेम किसीके लिए प्रबल आसक्तिरूप रख लेता है ।
और किसीको महायोग हो चतुर्वर्ग फल देता है ॥
जन्म प्रेमसे, मृत्यु प्रेमसे, सृष्टि प्रेमसे और विनाश ।
पृथ्वीभर पर प्रेम गूँजता और स्तब्ध है नीलाकाश ॥

[पर्दा गिरता है]

उच्च श्रेणीका नाटक-साहित्य।

हिन्दीमें रंगभूमि पर खेलनेयोग्य नाटकोंका विशेष करके उच्च श्रेणीके प्रभावशाली नाटकोंका एक तरहसे अभाव हो रहा है। इस विषयके प्रतिभाशाली लेखक और लेखकोंको उत्साहित करनेवाली कम्पनियाँ भी हिन्दीसंसारमें नहीं हैं जिससे इस बातकी आशा की जासके कि हिन्दीके इस विभागकी सन्तोषजनक पूर्ति शीघ्र ही हो सकेगी। यह देख कर हमने दूसरी भाषाओंके उच्च श्रेणीके नाटकोंके हिन्दी अनुवाद या रूपान्तर प्रकाशित करनेका निश्चय किया है। ये अनुवाद या रूपान्तर ऐसे होंगे जिन्हें पढ़ने या खेलनेमें आपको स्वतंत्र नाटकोंका भ्रम होगा और इनके द्वारा आपको आनन्द भी स्वतंत्र-नाटकोंके ही समान प्राप्त होगा।

सबसे पहले हमने बंगालके सर्वोच्च नाटक-लेखक और कविश्रेष्ठ **स्वर्गीय द्विजेन्द्रलाल राय**के नाटकोंको प्रकाशित किया है। नाट्यसाहित्यके मर्मज्ञोंका कथन है कि इस देशकी किसी भी जीवित भाषाके लेखकोंमें द्विजेन्द्र बाबूकी जोड़का नाटक-लेखक नहीं हुआ। उनकी प्रतिभा बड़ी ही विलक्षण और विचित्र रसमयी थी। वे बड़े ही उदार और देशभक्त लेखक थे। उनके नाटक दर्शकों और पाठकोंको इस मर्त्यलोकसे उठा कर स्वर्गीय और पवित्र भावोंके किसी अचिन्त्य प्रदेशमें ले जाते हैं। उनके नाटक पवित्रता, उदारता, देशभक्ति और स्वार्थत्यागके भावोंसे भरे हुए हैं। उन्मादक शृंगार और हाव भावोंकी उनमें गन्ध भी नहीं। द्विजेन्द्र बाबू हास्यरसके और व्यंग्य कविताके भी सिद्धहस्त लेखक थे। अतएव उनके नाटकोंमें इसकी भी कमी नहीं। उनके उज्वल और निर्मल हास्यविनोदको पढ़कर—जिसमें अश्लीलताकी या भण्डताकी एक छींट भी नहीं—आप लोट पोट हो जायँगे। द्विजेन्द्र बाबूके नाटक इस प्रकारके भावों और विचारोंके भाण्डार हैं जिनके प्रचारकी इस समय इस देशमें बहुत बड़ी आवश्यकता है।

बंगलाके नाटक-साहित्यमें द्विजेन्द बाबूका आसन जगत्प्रसिद्ध कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरसे भी कई बातोंमें ऊँचा समझा जाता है। स्वयं रवीन्द्र बाबू भी द्विजेन्द्रकी रचनाओं पर मुग्ध हैं। वे बड़े ही निपुण और सूक्ष्मदर्शी समालोचक हैं। उन्होंने 'मन्द्रकाव्य' की समालोचनामें द्विजेन्द्र बाबूकी मौलिकता और अलौकिक प्रतिभाकी जिस प्रकार अकपट और असंकोच प्रशंसा की है, कहते हैं कि उनके द्वारा इतनी